लुई कोहनी मुखाकृति विज्ञान 1916

साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन
अर्थात
मुखाकृतिविज्ञान
सर्वोपयोगी
सचित्र

जलचिकित्सा निदान ग्रन्थावली

मुखाकृतिविज्ञान

[साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन]

प्रकाशक—

श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप

ओ३म् तत्सत्

मुखाकृति विज्ञान

(साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन)

अर्थात्

रोग निदान करने की नवीन विधि

लुई कोह्नी, रचित

अनुवादक

पं० बालाप्रसाद शर्म्मा अध्यापक महाविद्यालय ज्वालापुर

प्रकाशक

श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी० ए० एल० एल० बी० वकील

हाईकोर्ट, मुरादाबाद

श्रोत्रिय जगदीशदत्त के 'दीनबन्धु प्रेस' बिजनौर में मुद्रित हुई।

प्रथमावृत्ति १००० | सम्वत् १९७३ विक्रमी | मूल्य ४) चार रुपया

लुई कोहनी साहिब
के
चिकित्सालय का चित्र
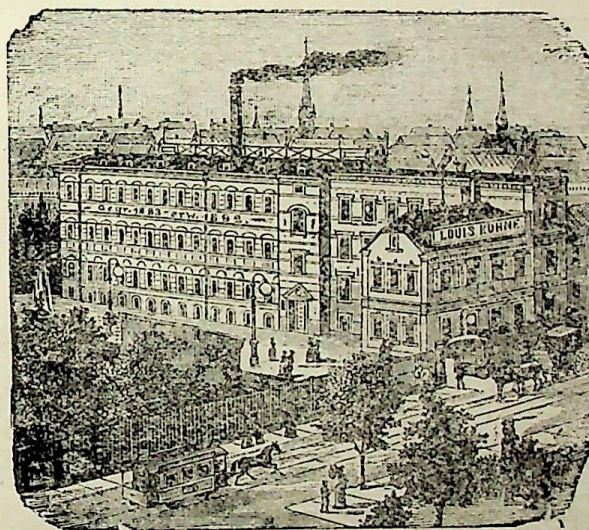
जहाँ कि सब देश और जाति के लोगों की चिकित्सा विना औषधि और बिना चीरा फाड़ी (शस्त्र क्रिया) के होती है।

१५-२४ फ्लास प्लेट्ज़, लिपज़िग, (जर्मनी)

यह चिकित्सालय १० अकतूबर सन् १८८३ ई० में खोला गया और सन् १८९२, १९०१ और १९०४ में बढ़ाया गया।

विषयानुक्रमणिका

"आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के रचनेवाले

लुई कुह्नी साहेब

का चित्र।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

॥ निवेदन ॥

य पाठक वृन्द अत्यन्त हर्ष के साथ यह भाषानुवाद साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन पुस्तक का आपके सामने उपस्थित करके आशा रखता हूं कि आप इसको उसी प्रेम और प्रीति की दृष्टि से स्वीकार करेंगे जैसे कि आरोग्ता प्राप्त करने की नवीन विद्या पुस्तक को किया है।

परम पिता परमेश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि यह पुस्तक संसार से रोग न्यून करने में वैसी ही सहायक सिद्ध हो जैसा कि आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या।

यह अनुवाद मेरा किया हुवा नहीं है परन्तु श्रीयुत पंडित बाला प्रसाद जी महा बिद्यालय ज्वालापुर वालों ने यह अनुवाद मेरे लिये मेरी उर्दू की साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन नाम की पुस्तक से किया है। जिसके लिये मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूं। उनके अनुवाद को एकबार मैंने इस विचार से अवश्य देखा है कि इस में कोई भाव न रहजावे अतः ऐसा करने में यदि कोई अशुद्धि किसी प्रकार होगई होतो उसका दोष मुझपर है पाठकगण कृपया क्षमा करें।

मुरादाबाद	शुभचिंतक।
६ जुलाई सन् १९१६ ई०	श्रौत्रिय—कृष्णस्वरूप

ओ३म्

जर्मन भाषा में इस पुस्तक की प्रथम संस्करण की

* भूमिका *

मैं इस पुस्तक में बर्षों के बिचार और अपने स्वाध्याय के अनुभव सर्व साधारण के समक्ष में उपस्थित करता हूं। मेरे अनुयायी और मित्रवर्ग बर्षों से इस बात पर बल देते रहे हैं कि "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" पर मैं एक पुस्तक लिखूं। निदान अब वह पुस्तक मुद्रित हुई है, मुझे पूर्ण आशा है कि जनता उसको हृदय से स्वीकृत करेगी।

इस कार्य्य के समाप्त करने में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है—ऐसी व्यक्तियों को खोजना पड़ा है कि जो अपने चित्र मुद्रित कराने की आज्ञा देवें—प्रथम ऐसे चित्रकारों की चिन्ता लगी जो हमारे अभिप्राय को समझ लेवें—और लकड़ी पर खोदने वाले उन व्यक्तियों की खोज करनी पड़ी जो मूल चित्र की जैसी की तैसी प्रतिलिपि उतारदेवें।

मेरे चिकित्सालय का कार्य्य बढ़जाने से अन्य कार्य्यों में योग देने के लिये समय नहीं मिलता अतः कई सप्ताह ऐसे व्यतीत हुए कि पुस्तक को हाथ भी नहीं लगाया गया; किन्तु यह सब कठिनाइयां गत होगई हैं—पुस्तक अब सम्पूर्ण होगयी

है। इस पुस्तक को सर्व साधारण के समक्ष में लाने से पूर्व किंचित शब्द भूमिका के ढंग पर कहते हैं। मैं अपने पाठक वर्ग से प्रार्थना करता हूं कि इस "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन" अर्थात् रोग निदान की नवीनविधि का अवलोकन निस्पक्ष होकर करें और इस विषय पर कि इसका मूल्य क्या है? उस समय तक अपनी सम्मति न देवें जब तक इस विद्या में स्वयं कुछ अनुभव न प्राप्त करलें। दुर्भाग्य वश यह बात सरल नहीं है कि "निदान की इस नवीन विधि" को केवल इस पुस्तक द्वारा ही स्पष्ट समझ लिया जावे क्योंकि शरीर का चित्र खींचा जा सकता है न कि रङ्ग और न भिन्न २ शरीरावयव की चाल का चित्र। किन्तु किञ्चित धैर्य्य से सच्चे विद्यार्थी को सफलता प्राप्त होगी। मेरा विचार इस ओर भी गया कि इस पुस्तक में रङ्गीन चित्र लगाऊँ लेकिन विशेष कारणों द्वारा तत्काल ही ज्ञात हुआ कि उतने पूर्ण अंश के साथ जितने कि इस अवसर पर कार्य्य निकालने के लिये आवश्यक हैं नहीं छापे जा सक्ते, यदि वास्तव में उनसे कोई कार्य्य निकालना अभीष्ट है। इस कारण इसका विचार मैंने छोड़ दिया और वस्तुतः नीरोग रङ्ग का निदान करना विशेष २ भिन्न २ आकृतियों के निदान करने की अपेक्षा अधिक सरल है। और इस ग्रन्थ में उपर्युक्त अन्तिम

(भिन्न २ आकृतियें जिनमें विशेष २ बातें दिखलाई गई हैं) अधिकता से दिये गये हैं। जब इन आकृतियों को एक बार पूर्ण तथा समझ लिया गया तो (यह समझना चाहिये कि) साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन के समझने के लिये एक अत्यावश्यकीय बात प्राप्त हो गई। मैं प्रत्येक व्यक्ति को केवल इस बात की उत्तेजना दे सकता हूं कि वह इस "निदान की नवीन विधि" के अवलोकन में अपने आपको परिश्रम के साथ लगावे और यथा सम्भव शीघ्र ही स्वयं प्रत्यक्ष निरीक्षण करना प्रारम्भ कर देवे।

यह पुस्तक उस प्रश्न का भी उत्तर देती है जो मुझ से बहुधा कहा जाया करता है अर्थात् कि मैंने "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" को किस प्रकार निर्माण किया? पुस्तक में दिखलाया गया है कि क्रमबद्ध निरीक्षण, विचार और अनुसन्धान ने मुझे उन परिणामों तक पहुंचाया है जोकि उसमें वर्णन किये गये हैं।

सन् १८८३ई० में मैंने इस "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" का अपनी चिकित्सा विधि में प्रयोग किया है और सन् १८८८ ई० से बराबर इस विषय पर निश्चित समयों में शिक्षा दे रहा हूं। मेरी शिक्षा के अनुभव ने मेरे समक्ष यह सिद्ध कर

दिया है कि ठीक निगाह रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस नवीन निदान को सीख सकता है, और यह कि किसी विशेष प्रकारकी धारणा शक्ति की इस में आवश्यकता नहीं है। श्रेणियों को इस प्रकार शिक्षा देने से, इस साइन्स आफ़ फेशियल एक्स प्रेशन के नियम से किसी सीमा तक सर्वसाधारण को ज्ञान होगया है।

इस प्रकार के यत्नों की कमीं नहीं रही है कि मेरे उस अधिकार पर विवाद किया जाय, जो मुझे इस विषय में प्राप्त है कि मेरी दर्याफ्त (मेरा आविष्कार) सब से प्रथम है—यहां तक कि एक प्रोफ़ेसर और राजवैद्य ने अपनी एक पुस्तक में (जो उसने लिपज़िग यूनीवर्सिटी की मैडीकल फेकल्टी की भेंट की थी) मेरे आविष्कार को अपने ही मस्तिष्क से उत्पन्न होने की बात प्रकाशित की है और उसी के साथ मेरे उन लेकचरों को अधिकतर शब्द बा शब्द अनुकरण [नकल] किया है जो मैंने अपने विद्यार्थियों के समक्ष में दिये थे।

संभव है कि किसी न किसी समय ऐसी व्यक्तियां रही हों जिन्होंने कि शरीर की बाह्य दशा देखकर आभ्यन्तर दशा के निदान करने का यत्न किया हो किन्तु तो भी उनके यत्नों ने कोई वास्तविक विशेषता प्राप्त नहीं की।

सर्वदा मेरी इच्छा यही रही कि कोई बात ऐसी आवि-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रकार करूं जो प्रत्येक के लिये लाभदायक और उसके अनुकूल चलने के योग्य हो—इस विषय में मुझे कृत कार्य्यता हुई वा नहीं इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूं।

लूई कोहनी

लिपज़िग मई

सन् १८९५

जर्मन भाषा में मुद्रित नवें संस्करण की

भूमिका
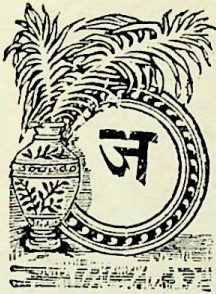
र्मन देश और बाह्य देशो के सब प्रकार के लोगों में जो लोक प्रियता का पद इस पुस्तक को मिला है उस से मुझे उत्साह हुआ है कि मैं शीघ्र २ इस पुस्तक को मुद्रित कराऊं।

यहां तक कि यह नवम बार छपती है। वह आशाएं जिनको मैंने उस समय प्रकट किया था जबकि प्रथम संस्करण छपा था—पूर्ण हुए बिना नहीं रहीं। और इस अवसर पर मैं प्रसन्नता पूर्वक अपने मित्रों और अनुयायियों की कृपा और सहायताओं के लिये धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने मेरी पुस्तक को पसन्द किया और उसके साथ सहृदयता प्रकट की जिसके कारण यह अधिक प्रसिद्ध हुई।

पाठकों को कदाचित यह प्रसन्नता का कारण होगा कि अब यह पुस्तक इंगलिश–स्पेनिश–डेनिश और तैलँगूगी भाषाओं में भी छपी है।

सत्य को अपने और सब जगह पहुंचने में सफलता प्राप्त करना चाहिये यही मेरी अभिलाषा है कि यह नूतन संस्करण इस कार्य में सहायता प्राप्त करेगी।

लिपज़िग,
२५ जुलाई सन् १९००ई०

लुई कोहनी

प्रस्तावना
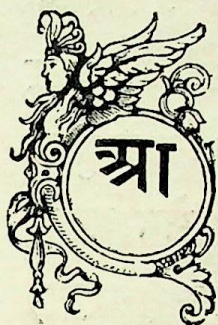
आरोग्यता प्राप्त करने की नई विद्या की निदान विधि यह साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्सप्रैशन है और रोग निदान करने की इस नवीन विधि को वही लोग खूब समझ सकेंगे जो आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या के सिद्धान्तों को भली भाँति समझ चुके हों इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को जोकि "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्सप्रैशन" को सीखना और समझना चाहता है, मैं सूचित करता हूं कि वह अपने आपसे यह प्रश्न करे कि आया वह आरोग्यता प्राप्तकरनेकी नवीनविद्या के सिद्धान्तों से भली भाँति परिचित है नहीं ?

और जिन सिद्धान्तों पर कि आरोग्यता प्राप्त करनेकी नवीन विद्या निर्भर है उन पर उसने वास्तव में अधिकार प्राप्त कर लिया है वा नहीं? अब इस स्थान पर इस आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या के स्थूल २ सिद्धान्तों को वर्णन करता हूं उनको भली भाँति बुद्धि में धारण करना नितान्त आवश्यक है। और यदि अधिक स्पष्टता की आवश्यकता हो तो अपनी सम्पादित आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या नामक पुस्तक की ओर

ध्यान आकर्षित कराता हूं।

(१) रोग का कारण एक है–चाहे वह नाना प्रकार के रूपों और भिन्न २ दर्जे की सख्ती के साथ प्रकट हो। और शरीर के उस विशेष अङ्ग की निर्भरता जिसमें रोग प्रगट हुआ है और उसके वास्तविक रूप की निर्भरता जोकि रोग ग्रहण करता है पैत्रिक संस्कारों के प्रभावों आयु--व्यवसाय (पेशा) निवास स्थान, भोजन, जल, वायु इत्यादि पर निर्भर है।

(२) शरीर में विकृत पदार्थ मौजूद होने से रोग उत्पन्न होता है, ऐसा विकृत पदार्थ प्रारम्भ में पेड़ू के छिद्रों में (मुनफ़िज़ों में) आस पास एकत्रित होता है फिर वहाँ से शरीर के भिन्न२ अङ्गों विशेष कर शिर व गर्दन में विभाजित होजाता है यह विकृत पदार्थ शरीर की आकृति को परिवर्तन करदेता है, और इस परिवर्तन से रोग की भयङ्करता का अनुमान हो सकता है। निदान "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रैशन" की नींव इसी बात पर स्थिर की गई है। अतः विकृत पदार्थ के इस प्रकार एकत्रित होने को स्वीकार न करना मानो "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स-प्रैशन" की सत्यता पर सन्देह करना है, किन्तु यह बात कि आ-कृति के परिवर्तनों से शरीर की दशाओं की वस्तुतः जाँच हो सकती है ? वास्तव में कठिनता से विवाद में लाये जाने योग्य

है और वस्तुतः यही दृढ़ प्रमाण रोग सम्बन्धी मेरे सर्व सिद्धान्तों की सत्यता का है।

(३) विना ज्वर के कोई रोग, और विना रोग के कोई ज्वर नहीं होता।

शरीर के भीतर विकृत पदार्थ के प्रवेश करने और वहाँ इकट्ठा होने से शरीराङ्ग और विकृत पदार्थों के बीच खैंचा खैंची प्रारम्भ होजाती है और यही भीतरी गति या रगड़ है जिससे कि ज्वर पैदा होता है। निदान प्रत्येक व्यक्ति को इसका अनुभव है कि जब किसी अन्य पदार्थ का छोटे से छोटा टुकड़ा भी शरीर में प्रवेश करता है, उदाहरणार्थ उँगली में फाँस का लगना, तो वह तत्काल सब शरीर में कष्ट और दुःख उत्पन्न करदेता है एक प्रकार का ज्वर प्रारम्भ हो जाता है जो उस समय तक, जब तक कि वह अन्य पदार्थ शरीर से बहिष्कृत न हो जावे, दूर नहीं होता। इसी प्रकार शरीर के भीतर प्रविष्ट हुआ विकृत पदार्थ ज्वर उत्पन्न कर देता है। आदि में यह ज्वर बहुत ही हल्का होता है और उसकी गति भीतर ही भीतर होती है (यह ज्वर पुराना है) किन्तु यदि शरीरमें एकाएक परिवर्तन हो जावे,अथवा ऋतु परिवर्तन या मस्तिष्क आवेश (जोश) से विकृत पदार्थ प्रबलता से सड़ने लगे। तो सम्भव है कि

ज्वर बेग के साथ प्रतीत होगा । निदान किसी रोग के विषय में यह कहना कि उसके साथ ज्वर नहीं है सर्वदा भूल की बात है ।

आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या के सिद्धान्तों के इस थोड़े से संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् अब मैं नीचे के प्रश्न पर विवेचना करता हूं अर्थात् कि "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रैशन" क्या वस्तु है?

साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रैशन वह क्रिया है जिसमें शरीर के बाह्य रूपसे उसकी आभ्यन्तरिक दशाओं का निदान किया जाता है। और जो कुछ वर्णन हो चुका है उससे प्रकट है कि हमको जो कुछ काम करना है वह निम्न लिखित कार्यों से न्यून या अधिक नहीं है अर्थातः—

(१) यह देखना है कि शरीर किस सीमा तक विकृत पदार्थ से भरा हुआ है और वह पदार्थ शरीर के किन २ भागों में एकत्रित हुआ है ।

(२) जो लक्षण कि उत्पन्न हुए हैं और भविष्य में जिनका पैदा होना आवश्यक है उनसे परिणाम निकालना ।

किन्तु साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रैशन का यह काम नहीं है कि वह शरीर की प्रत्येक बाह्य वा आभ्यन्तरिक द-

शाओं के परिवर्तन को स्पष्टतया बतलावे और रोग के भिन्न २ रूपों को निश्चय करे और प्रत्येक रोग के लिये वैद्यक विद्या की भाँति विशेष नाम रक्खे। किन्तु उसके विपरीत यह बात विचार दृष्टि में है कि शरीर की नीरोगता और रोग जानने के अभिप्राय से सम्पूर्ण शरीरावयव की परीक्षा करे और रोग की दशा में निश्चय करे कि रोग कहाँ तक बढ़ गया है या कहाँतक बढ़ने की सम्भावना है और उसके "स्वस्थ होने की क्या आशा है"।

और इस "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्सप्रैशन" की बहुमूल्यता विशेषतया इसी बात में है कि उसके कारण हमारे लिये यह बात सम्भव जान पड़ती है कि सम्पूर्ण शरीर की दशा की परीक्षा कर सके और यह प्रस्ताव कर सकें कि—आया हमारा रोगी अधिक बीमार है या सरलता से स्वस्थ हो सकता है जिससे हम निदान की इस विधि अर्थात् (साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्सप्रैशन) के मूल्य की स्पष्टतया परीक्षा कर सकें। हमको अन्य चिकित्साओं के निदान विधियों की संक्षेपतया समालोचना करने दीजिये?

निदान की अन्य विधियें

लोपैथी—अर्थात् वह चिकित्सा है जो सामयिक सम्राट् से अनुमत है, और जो अब तक साधारण तया शिरमौर हो रही है। सूक्ष्म निदान की बहुत ही प्रतिष्ठा करता है। इसी उद्देश्य पूर्ति के लिये (इस में) विशेष कर मृत शरीर को चीर फाड़ करके पूर्ण निरीक्षण किया जाता है।

इस चिकित्साके चिकित्सक [१] को—उचित है कि वह प्रत्येक शरीरावयव का नाम जाने, और प्रत्येक अङ्ग के यथा स्थान से परिचित हो और यह भी समझे कि भीतरी अङ्गों की दशा का उनकी क्रियाओं से किस प्रकार अनुमान करना चाहिये। इस लिये वह शरीर की भीतरी दशा जानने के हेतू उँगलियों से उसे ठोकता है। शरीर को कोमलता से छूकर उस की दशा ज्ञात करता है। और शरीरावयव के शब्द को कान से सुनता है (उदाहरणार्थ फुफ्फुसों और दिल की धड़कन को) और इन निरीक्षणों से अङ्गों की दशा से ज्ञान प्राप्त करता है। इस

नोट—(१) अर्थात् एलोपथिक विधि से चिकित्सा करने वाले वैद्य को।

परीक्षा में पूर्ण निश्चय प्राप्त करने के लिये अत्यन्त अधिक संख्या में पूरे चातुर्य्य और कौशल युक्त यन्त्र निर्माण किये गये हैं। और यथार्थ में प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य की उस बुद्धिमत्ता पर जिससे कि यह आविष्कार कार्य रूप में आते हैं, और कौशल्य की उस कारीगरी पर जिनसे इन यन्त्रों के सूक्ष्म पुर्जे सोचे गये हैं, वस्तुतः महान आश्चर्य होता है।

आधुनिक समय में थर्मामीटर (शीतोष्ण दशा मापक यन्त्र) के अतिरिक्त खुर्दबीन (सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र) ने भी बड़े २ कार्य्य किये हैं। क्योंकि जब से कीटाणु १ की बाबत यह विचार हुआ है कि वह सम्पूर्ण रोगों के कारण होते हैं, तब से तत्ववेत्ता परिश्रम से इन जीव धारियों का अनुसन्धान और खोज कर रहे हैं।

अतः विस्तृत वैद्यक सम्बन्धी परीक्षा उन सब निश्चित संख्या में किये हुये भिन्न २ निरीक्षणों का समुदाय है जो येन केन प्रकारेण एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। यह परीक्षा लग भग निम्न लिखित विधि से की जाती है।

---

(१) यह वानस्पतिक ऐसे छोटे से छोटे शरीर हैं जो केवल खुर्दबीन की ही सहायता से देखे जा सकते हैं। उनकी शकल लकड़ीकी तरह सीधी होतीहै।

प्रथम—वैद्य १ रोगी से प्रत्येक प्रकार के प्रश्न करता है। जिह्वा और फिर, नाड़ी देखता है और छाती और पीठ को उ-गलियों से ठोकता है, और शब्द सुनता है ताकि फेफड़ों, और दिल की दशा व कैफ़ियत का ज्ञान प्राप्त करे। तत्पश्चात् यकृत और पक्वाशय (जिगर व मेदा) के आस पास के स्थानों को धीरे २ दबा दबा कर देखा जाता है, और जननेन्द्रिय की जांच की जाती है और स्त्रियों के जननेन्द्रिय का भीतरी निरोक्षण इसपैक्यूलम द्वारा (यह ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा किसी अङ्ग को भीतर से देख सकते हैं यथा कान, नाक इत्यादि) किया जाता है। गर्मी थर्मामीटर से जानी जाती है। रक्त मुख का लुआब, थूक, मूत्र तक खुर्दबीन से जाँचे जा सकते हैं। और कदाचित् त्वचा के परिमाणु और माँस के पट्ठे भी इसी प्रकार जाँचें जा सकते हैं।

सम्भव है कि इस साधारण जाँच के पश्चात् पृथक २ अङ्ग का अधिक स्पष्टता से अवलोकन किया जावे यथा आंख और कान का यद्यपि साधारणतया अन्तिम वर्णित अवलोकन स्पैशिलिस्ट (उस वैद्य को कहते हैं जो किसी विशेष अङ्ग के

(१) वैद्य से अभिप्राय हकीम व डाक्टर व अन्य चिकित्सकों से है जो औषधि द्वारा चिकित्सा करते हैं।

रोग की चिकित्सा में अनुभव रखता हो, जैसे आँख के डाक्टर, दांत के डाक्टर इत्यादि २) और (देखिये कि) डाक्टर की अन्तिम सम्मति क्या होती है ?

रोगी से कह दिया जाता है कि अमुक अङ्ग पूरी तरह निरोग है, और अमुक अङ्ग पर रोग का थोड़ा सा प्रभाव पड़ा है, और अमुक अङ्ग कदाचित् और भी अधिक दुर्दशा में है। किन्तु सम्पूर्ण शरीर की दशा या स्वभाव के विषय में या उस शक्ति के विषय में जिससे शरीर स्वयम् आरोग्यता का यत्न करता है, कठिनता से ही दी जाती है। या अगर कभी (साधारण नियमों का अपवाद करके) ऐसी सम्मति प्रकट भी की जाती है तो यह सम्मति ऊपर कहे हुए शारीरिक परीक्षाओं के कारण इतनी नहीं होती है, जितनी की उस साधारण विचार के कारण होती है जो कि रोगी की प्रत्यक्ष रूप रङ्ग और आकृति और शायद रोगी के कहे हुए वर्णन से स्थिर की गई हो। कारण यह है कि वैद्य वा डाक्टर भी किसी अन्य व्यक्ति की तरह (यथा रोगी की सेवा करने वाली स्त्रियों के) जो रोगी की सेवा में अधिकतर लगा रहता है, वर्षों के अनुभवों द्वारा अपनी निरीक्षण शक्ति में एक प्रकार की तीक्ष्णता प्राप्त करलेता है। अतः इस विशेष प्रकार के निदान का क्या गौरव हो सकता है ? मैं

तो अवश्य इस बात के स्वीकार करने को तैयार नहीं कि उस का वही मूल्य है, जोकि प्रायः उसका मूल्य होना बतलाया जाता है ।

(प्रथम) रोग निदान करने की यह विधि विश्वास करने योग्य नहीं है—केवल इतना ही पर्याप्त है कि यदि थोड़े से वैद्यों से कोई व्यक्ति अपनी जाँच करावे तो उसको उस समय आश्चर्य होगा, जब वह उनकी भिन्न भिन्न जाँचों के परिणाम सुनेगा। कभी २ तो सुप्रसिद्ध वैद्यों का निदान [तशख़ीस] भी एक दूसरे के नितान्त विपरीत होती है, और अगर विजातीय द्रव्य शरीर में किसी विशेष अङ्ग के इधर उधर इकट्ठा नहीं हुआ है, तो वैद्य इस आश्चर्यमय परिणाम पर पहुंचता है कि रोगी बिलकुल निरोग है, किन्तु वह [रोगी] स्वयं अपने आपको वस्तुतः पूरा रोगी और मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ अनुभव करता है । यह दशा विशेषकर उन रोगियों की होती है जोकि रग पट्ठों के रोगों में ग्रसित होते हैं, और वैद्यों की उपर्युक्त सम्मति सुनकर प्रायः निराश होजाते हैं, क्योंकि वह स्वयं भली प्रकार जानते हैं कि वह अत्यन्त रोगी हैं। डाक्टरी निदान की यह अविश्वसता स्वाभाविक है क्योंकि इस प्रकार की चिकित्सा पर पूरा २ भरोसा रखने वाले वैद्यों ने रोग की नेचर अर्थात् प्रकृति से जानकारी

प्राप्त नहीं की है।

(द्वितीय) डाक्टरी निदान में रोग के इलाज की कोई उचित नींव नहीं है। यहां तक कि उन अवसरों पर भी कि जहां निदान विश्वास पूर्वक होसकता है वहां भी [उचित चिकित्सा की नींव] नहीं है, वह कोई ऐसी नींव जिस पर पैर जमाए जावें प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि एलोपैथिक डाक्टर इस बात की कल्पना करके आगे बढ़ता है कि शरीर का प्रत्येक प्रथक् अवयव उसके शेष भागों से सम्बन्धित न होकर प्रायः स्वयं रोग से प्रभावित होजाता हैं। अतः उसी के अनुसार वह डाक्टर चिकित्सा निश्चय करता है।

उन बहुत से प्रमाणों से जो मेरे पास उपस्थित हैं प्रकट होता है कि ऐसी चिकित्सायें कैसे और कितनी बेकार ही नहीं प्रत्युतः अधिकतर हानि कारक होती हैं, इस अवसर पर दो तीन विशेष दृष्टान्त उपस्थित करता हूं:—

(१) एक महाशय मिस्टर ऐ (a) नामक, जिह्वा की बहुत बड़ी सूजन में फँसे थे। चूंकि उसकी जाँच सहज में ही होगई डाक्टर को उसके निदान करने में कुछ भी कठिनता नहीं हुई। केवल जिह्वा की ही चिकित्सा की गई। क्योंकि डाक्टर ने केवल उसी को रोग का स्थान ख्याल किया था। प-

रन्तु परिणाम बिल्कुल अविश्वसनीय हुआ क्योंकि अभागा रोगी दिन पर दिन बिगड़ता गया और उसकी जिह्वा की सूजन बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि वह अपनी जिह्वा को हिलातक भी नहीं सकता था, अब इस दशा को प्राप्त होकर मिस्टर ए–के रोग का निदान मैंने "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्स प्रैशन" के सिद्धान्तानुसार किया, और जो चिकित्सा मैंने बताई उसी में पूरी सफलता प्राप्त हुई।

(२) बर्लिन नगर के अन्तर्गत एक परिवार में एक बालक महीनों रोगी पड़ा रहा, और उसका चिकित्सक जो एक प्रसिद्ध प्रोफेसर था, चिरकाल तक यह भी निर्णय न कर सका कि उस को वस्तुतः क्या रोग है–अन्त में सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षायें करने से उसने यह निर्णय किया कि एक विशेष प्रकार के बेसैलाई की मौजूदगी से रोग हुआ है, इस बेसैलाई के सम्बन्ध में यह कथन है कि घास की शाखाओं पर वृद्धि करती है। यह सत्य है और निश्चिय पूर्वक सिद्ध हो सकता है कि उस बच्चे ने कभी घास छुई तक नहीं, किन्तु निदान वही था और डाक्टर ने ख्याल कर लिया कि उसका काम बच्चे के शरीर से बेसैलाई को नष्ट और अस्तित्व हीन करदेना ही है। परिणाम अच्छा नहीं हुआ।

अर्थात् बेचारे रोगी का रोग दिन प्रति दिन बढ़ता गया और उसकी दशा अत्यन्त दुःखप्रद होगई, और साथ ही साथ बेसैलाई वृद्धि पाती गई । अब उस कुटुम्ब वालों का विचार मेरी चिकित्सा की ओर फिरा और मैंने भी उस बच्चे के रोग का निदान किया, किन्तु बेसैलाई की तरफ बिल्कुल ध्यान न देकर विकृत पदार्थ निकालने के लिये चिकित्सा शुरूकी ।"

डाक्टर को जिससे मेरी चिकित्सा का कुछ भी दर्शन नहीं किया था । खुर्दबीन से यह देख कर कि बेसैलाई की संख्या में आश्चर्य जनक कमी होगई है, बहुत ही अचम्भा हुआ। इस बात पर उसने कहा कि कभी २ नेचर स्वयं ऐसी बेसैलाई को नष्ट और अस्तित्व हीन कर दिया करती है ।

(३) एक हृष्ट पुष्ट और शक्तिशाली मनुष्य मिष्टर एम M. लग भग १० वर्ष से काम करने के योग्य नहीं रहा था, और आत्मघात के विचार उसको इस सीमातक सताते थे कि प्रति क्षण उसकी निगरानी करी जाया करती थी । कई वैद्यों ने उसके रोग की जांच की, और कैसे आश्चर्य की बात है कि सब ने एक स्वर से कहा कि रोगी बिल्कुल निरोग है । उसको केवल भ्रम ही भ्रम है, और उसके लिये उचित है कि पहाड़ी प्रदेश में निवास करके अपना मनोरञ्जन करे । इसलिये उस

शिक्षा पर अमल भी किया गया किन्तु उसकी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अब उसने मुझसे सम्मति ली मैंने "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्सप्रैशन" द्वारा तत्काल जान लिया कि उसका शरीर विजातीय द्रव्य से खूब भरा हुआ है जो चिकित्सा मैंने बतलाई वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई! क्योंकि कुछ ही महीनों में मिस्टर "एम" की दूसरी ही आकृति बन गई। वह आनन्द व प्रसन्नता से भरा हुआ होगया। और (आत्मघात के विचार ऐसे नष्ट होगये कि) अब बिना किसी भय के उसके अधिकार में पिस्तौल दिया जा सकता है।

अतः यह एलोपैथिक रोग निदान विधि जहाँ तक कि उसका सम्बन्ध चिकित्सा से है कुछ मूल्य नहीं रखता। क्यों कि यह बिल्कुल मिथ्या कल्पनाओं पर निर्भर है और इस मिथ्या कल्पना का मूल यह है कि शरीर के भिन्न २ अङ्ग शेष शरीर को छोड़कर किसी न किसी प्रकार से बीमार हो जाते हैं। इस लिये इस विशेष भूल ने स्पेशिलिज़्म को पैदा किया है और वर्तमान समय में इस (स्पेशिलिज़्म की) की इतनी उन्नति हुई है कि बहुत से डाक्टरों को भी आक्षेप करने की आवश्यकता हुई। आधुनिक समय में यह होना सम्भव है कि एक रोगी जोकि एक ही समय में नेत्र, नाक, कान के

रोगों में ग्रसित हो, तो वह तीन स्पेशिलिस्ट की चिकित्सा में एक ही साथ रहे, और अगर कोई भीतरी रोग भी हो जावे तो शायद चौथे वैद्य के बुलाने को भी बाध्य हो। और आश्चर्य यह है कि स्वयं वैद्य या डाक्टर स्वीकार करते हैं कि उन्हें अब तक रोग की नेचर नहीं मालूम हुई, हमने उस झगड़े को देखा है जो कि डाक्टरों में हैज़ा जैसे चिन्ह वाले रोगों के कारण जानने में हाल ही में बहुत धूमधाम से हुआ था। परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की व्याख्या करे या किसी नवीन प्रकार की चिकित्सा की विधि का प्रस्ताव करे तो उसपर सब उँगली उठाने लगते हैं।

एलोपैथिक (डाक्टरी) को किसी अवसर पर सफलता प्राप्त भी होती है, जिसका कारण यह है कि उसने अपने रोग निदान करने की विधि के भी प्रतिकूल [कि अमुक अङ्ग रोगी है] सब शरीर की भी चिकित्सा नियत की है।

अधिक दशाओं में तो सफलता केवल दिखावटी होती है जो कि रोग के दब जाने मात्र से ही प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ पारद् [पारा] से वस्तुतः कभी नैरोग्य [1] प्राप्त नहीं होता। किन्तु

नोट [१] नैरोग्य से अभिप्राय कृत्रिम आरोग्यता से है क्योंकि रोग के चिन्हों के दब जाने को ही बहुधा रोग का नष्ट हो जाना समझा जाता है।

इसके प्रतिकूल सर्वदा दशा अधिकतर खराब होजाती है तो भी उसके द्वारा जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों के कुछ चिन्ह दबाये जा सकते हैं शोक! है उस बिचारे रोगी की दशा पर जिसने पारे के द्वारा नैरोग्य लाभ किया हो और इसी प्रकार [पारे के ही समान] अपने प्रभाव में अफ़ीम का सत यानी "मार्फ़िया" आयोडीन, ब्रोमाइन, कोनाइन, ऐन्टीपाईरैन और संखिया हानिकारक और खराब हैं। इस विषय पर विशेष विवेचना विस्तार पूर्वक मेरी बनाई पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" में की गई है।

तृतीय—एलोपैथी के रोग निदान विधि से रोग केवल उसी समय पहिचान में आता है जबकि वह पूर्णतया उन्नति पाजाय, और उससे रोग का प्रारम्भ नहीं ज्ञात पड़ता और न उसके द्वारा भविष्य में रोग की होने वाली बृद्धि की निश्चय रूप से सम्भावना प्रतीत होती है। और रोग को प्रारम्भ में जान सकना और इस विषय के तत्काल बतला देने की योग्यता प्राप्त करना कि रोग भविष्य में क्या रूप धारण करेगा, एक अत्यन्त आवश्यकीय बात है। क्योंकि यदि वास्तव में रोग की प्रारम्भिक दशा में ज्ञात होजावे तो आरोग्यता सुगमता से शीघ्र ही प्राप्त हो सकती है।

होमियोपैथी—एलोपैथी से निकली है, और इसके अभ्यासियों में से अधिकतर एलोपैथी की पुरानी निदानविधि के अनुयायी हैं। और वह रोग के भेदों को एलोपैथी से भी अधिक भागों में बतलाते हैं, यह सत्य है कि होमियोपैथी में एक सर्व साधारणोपयोगी शिक्षा भी मौजूद है। अर्थात् रोग का निदान अधिकतर बाह्य चिन्हों से किया जाता है, और वस्तुतः बहुत सी बातों में आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या की निदान विधि के निकट तक पहुंच होगई है। तो भी होमियोपैथी में कोई स्पष्ट और निश्चित नियम नहीं है। इसी लिये चिकित्सा की निर्भरता बहुधा केवल रोगी या उसके घर वालोंकी उन बातों पर है, जो कि वे लोग रोग के सम्बन्ध में बतलावें, रोगी की वास्तविक चिकित्सा की बाबत होमियोपैथी उन्नति प्रकट करती है क्योंकि औषधि की छोटी २ मात्रायें शरीर को बड़ी बड़ी मात्राओं की भाँति स्पर्श ज्ञान रहित (बेहिस) नहीं कर देती, प्रत्युतः एक प्रकार का जीवन संचार करने का गुण रखती हैं। दुर्भाग्य वश होमियोपैथी के डाक्टर भी ऐसे हैं जोकि रोगी को विषैली औषधियों की बड़ी २ मात्रायें देते हैं।

मैगनेटोपैथी—इस चिकित्सा में निदान नहीं है। और इस की चिकित्सा एक ही प्रकार की है अतः उसके प्रयोगी (चि-

कित्सकों) से रोग के एक ही होने की शिक्षा मिलेगी, इसके चिकित्सक भी शरीर के उस विशेष अङ्ग की जो रोग से प्रभावित है खोज करते हैं।

परन्तु अधिकतर मनुष्यों पर मानुषीय आकर्षण (मैगनेटिक पावर) का प्रभाव नहीं होता और किन्हीं किन्हीं पर बहुत कम होता है। अतः इसके होते हुए भी अनेक दशाओं में अति उत्तम परिणाम प्राप्त होजावें तो भी रोग का निदान ऐसाही अनिश्चित है, जैसा कि रोग का इलाज ।

मनुष्य की [मैगनेटिक पावर) आकर्षण शक्ति के प्रभाव का पूरा २ ज्ञान प्राप्त होने से यह बात समझ में आ सकती है, और इस मानुषीय आकर्षण शक्ति के प्रभाव का उसी समय अनुभव होता है, जबकि कर्त्ता १ [आमिल] कर्म २ [मामूल] में ३ अन्तर हो।

वह विधि जिस में कि किसी कमरे के भीतर की वायु और

नोट–१ आमिल से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जोकि अपनी आकर्षण शक्ति का प्रभाव डाल कर रोगी को आराम करने का प्रयत्न करे।

२–मामूल से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जिस पर कि आकर्षण शक्ति का प्रभाव डाला जावे।

३–अर्थात् उनकी आकर्षण शक्तियों में अन्तर हो।

कमरेके बाहरकी वायु उस समय ही जबकि उन दोनों की शीतोष्ण दशामें अन्तरहोता है तो स्वयं एक जैसी होती रहती हैं, हमारे लिये मानुषीय आकर्षण शक्ति की क्रिया एक उचित दर्जे का ठीक २ चित्र उपस्थित करती है। अन्त में जब हम नेचर क्योर सिस्टम (अर्थात् स्वाभाविक रीति की चिकित्सा) पर आते हैं, जैसा कि साधारणतः कहा जाता है, तो हम देखते हैं कि उसमें भी कोई विशेष विधि रोग निदान की नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि इसका चिकित्सक शनैः २ एक प्रकार की ऐसी तीक्ष्णता तथा अनुभव प्राप्त करलेता है कि जिससे उसमें यह योग्यता हो जाती है कि साधारण रीति पर रोगी की दशाओं को भली भांति जान लेवे। किन्तु यह केवल एक विशेष प्रकार का अनुभव है [जोकि चिकित्सक को ही प्राप्त होता है] जिसकी कि कोई स्पष्ट नींव नहीं है। इसका प्रयोगी प्रायः सन्तोष करलेता है, यदि रोग का निदान किसी विचक्षण डाक्टर ने किया हो ताकि स्वयँ रोगी द्वारा ज्ञात कर सके कि उसे क्या व्यथा है ? यदि चिकित्सक स्वयं सनदयाफ्ता डाक्टर है, तो वह एलोपैथिक विधि के अनुसार निदान करता है। इस चिकित्सा के अन्य अनुयायियों की यह सम्मति है, कि रोग के निदान की आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि वह सम्पूर्ण

शरीर की चिकित्सा करते हैं, न कि किसी विशेष अङ्ग की। सिवाय उस दशा के जबकि नेचर ही को उसकी आवश्यकता हो, उनकी यह सम्मति ठीक है यदि उन्होंने डाक्टरी निदान विधि को सामने रख कर यह सम्मति स्थिर की है। किन्तु यदि उस निदान विधि को विचार करके जोकि पूरे शरीर का लिहाज़ करता है, और जिससे कि कुल शरीर की जांच होती है, और जिसके द्वारा सम्पूर्ण शरीर की आरोग्यता की दशा प्रतीत होती है, और रोग का कारण भी ज्ञात होता है, उन्होंने यह सम्मति स्थिर की है तो वह भूल पर हैं।

प्रत्येक डाक्टर ने बहुधा निरीक्षण किया होगा, कि किन्हीं २ अवसरों पर तो उसके नुसख़ों को पूरी सफलता प्राप्त हुई। और किन्हीं अन्य अवसरों पर थोड़ी या बिलकुल भी नहीं हुई किन्तु जबकि वह यह समझ लेवेगा कि "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" से किस प्रकार सम्पूर्ण शरीर की दशा की जांच होती है। तो उसको इस [1] बात पर कभी आश्चर्य न होगा।

अब हम "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" पर ही विचार करते हैं।

नोट-१ अर्थात् डाक्टर के नुसख़ों की सफलता या असफलता पर जिसका कथन उपरोक्त पंक्ति में किया गया है।

साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्स प्रैशन
की
वास्तविकता

किसी वस्तु की वास्तविकता का उसके नाम मात्र से पता लगाने का यत्न करना एक प्रकार की भूल है। "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्स प्रैशन" के शब्दों के नाम से निदान की इस नवीन विधि की केवल एक ही बात ज्ञात होती है। जब कि कोई व्यक्ति किसी पदार्थ की वास्तविकता बतलाने के लिये किन्हीं पारिभाषिक शब्दों के ढूंढ़ने का यत्न करता है तो प्रायः ऐसी ही कठिनाई प्रतीत होती है। यदि मैंने लैटिन या ग्रीक भाषा का कोई शब्द इसके लिये पसन्द किया होता तो किसी व्यक्ति को भी इसका विचार न होता। "साइन्स आफ़ फ़ैशिल एक्स प्रैशन" का सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीर से है क्योंकि चेहरा (मुखाकृति) शरीर का ऐसा भाग है जिसकी कि तत्काल ही परीक्षा की जा सकती है, और इस में (चेहरे में) केवल सम्पूर्ण मस्तिष्क सम्बन्धिनी ही नहीं

अपितु शारीरिक आभ्यन्तरीय क्रियायें भी अपना प्रतिबिम्ब डालती हैं। इस हेतु से चेहरे की आकृति ही है जिस पर की सबसे प्रथम विचार करना चाहिये और इसी लिहाज से नवीन निदान बिधि का नाम "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्स प्रैशन" रक्खा गया है जैसा कि वर्णन कर चुके हैं। यह बात नहीं है कि कोई रोग ऐसा हो जोकि केवल शरीर के किसी विशेष भाग पर अपना प्रभाव डाले। प्रत्येक रोग की दशा में रोगीका सम्पूर्ण शरीर रोग से प्रभावित होता है। सब शरीर की रङ्गत रूप में परिवर्तन होजाताहै किन्तु यह परिवर्तन विशेष २ स्थानों में ही ऐसी पूर्णता से प्रगट होता है कि स्पष्ट प्रकार से देखा जा सके। द्वितीय यह कि रोगीकी चाल में भी अन्तर आजाता है किन्तु इस परिवर्तन पर उस समय तक विशेष ध्यान नहीं होता जब तक कि परिवर्तन बहुत ही प्रकट न हो जावे। वह शरीर जिसमें कि विकृत पदार्थ मौजूद है वह आरोग्य शरीर की अपेक्षा अपनी क्रियायें भी भिन्न २ प्रकार में करता है और आरोग्यता की दशा का अनुमान शरीरिक क्रियाओं से ही हो सकता है। "साइन्स आफ़ फ़ैशियल एक्स प्रैशन" इन सब बातों का लिहाज़ करता है अर्थात् शरीर का रूप ज़ाहिरी चाल ढाल उसका रङ्ग और शरीर की भिन्न २ गतियों को अत्यन्त सावधानी के साथ देखता

है किन्तु इस अभिप्राय के लिये कि हम साफ़ तौर से परिवर्तनों की पहिचान कर सकें सब से प्रथम आरोग्य मनुष्य का अवलोकन करना चाहिये।

आरोग्य पुरुष

आरोग्य मनुष्य का चित्र खींचना कुछ सरल काम नहीं है। क्योंकि आज कल पूर्ण स्वस्थ कठिनाई से प्राप्त होता है। बनैले पशुओं में आरोग्यता नियम रूप से और रोग अपवाद रूप से (अर्थात् बहुत ही कम) पाया जाता है। बस उनकी दशाओं में निरोग आकृति का जान लेना सरल है, किन्तु सभ्य मनुष्य की दशा इसके नितान्त प्रतिकूल है। यह बात मुझे शनैः शनैः ही प्राप्त हुई है कि मैं एक निरोग मनुष्य के चित्र खींचने में सफल हुआ सबसे प्रथम मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं की दशा से यह बात निकाली कि उसकी ठीक आरोग्यता की दशा क्या होनी चाहिये ? यह आवश्यक है कि स्वस्थ शरीर अपने सब कर्त्तव्यों को पूर्ण विधि से करे।

अर्थात् विना किसी कष्ट या पीड़ा के और बिना किन्हीं कृत्रिम प्रतिवर्द्धक वस्तुओं की सहायता के। प्रथम उन क्रियाओं का वर्णन किया जाता है जो कि जीवन बनाए रखने के लिये आवश्यक हैं उदाहरणार्थ भोजन का आमाशय में ठीक ठीक पच कर फुज़लात (फोक, मल) के बाहर निकालने की क्रिया। आरोग्य मनुष्य को सच्ची क्षुधा की इच्छा प्रतीत होती है, जो कि प्राकृतिक भोजनों के खालेने से ही पूर्णतया शान्त हो जाती है। और पूर्व इसके कि उदर पूर्ति होने से कोई बेचैनी जान पड़े यह शान्ति दशा उत्पन्न हो जाती है। और पाचन क्रिया ऐसी चुपचाप होती है। कि मनुष्य को उसकी ख़बर भी नहीं होती। भोजन करने के पश्चात् किसी प्रकार की बेचैनी का मालूम होना या मसालेदार भोजनों और चरपरी खाद्य वस्तुओं के खाने की इच्छा होना अस्वाभाविक है और रोग को सूचित करती है। तृषा शान्ति के लिये केवल पानी ही की इच्छा होनी चाहिये।

मूत्र—गुर्दों की आर्द्रता (रतूबत) अर्थात् मूत्र त्याग करने में शरीरको कोई कष्ट न होना चाहिये, न मूत्रमें अनुचित ऊँचे अंश की शीतोष्ण दशा होनी चाहिये, उसका रङ्ग कहरूवाई (पीतवर्ण) होना चाहिये और बिना किसी रङ्ग का या रक्त वर्ण या काला

या बादल की तरह मैला न हो न लसदार हो न उसमें किसी रङ्ग या किसी प्रकार की ठोस वस्तु के परिमाणु एकत्रित हो जाते हों। उसकी गन्ध न मीठी हो न खट्टी हो।

मल—निरोग मनुष्य का मल गोल व लम्बोत्तरा (वेलन की तरह का) और बँधा हुआ होता है किन्तु कड़ा नहीं होता और वह शरीर को बिना गन्दा किये हुये निकल जाता है, साधारणतया उसका रङ्ग भूरा गेंहुआ हो। या हरा या स्वेत या सफेदी माइल काला न हो, और वह पतला या रक्त युक्त भी न हो और न उसमें कृमि हों पतला मल रोग का वैसा ही चिन्ह है जैसा कि काला सख्त गाँठ युक्त मल।

त्वचा—अर्थात् खाल, निरोग त्वचा से दुर्गन्ध नहीं निकलनी चाहिये जैसी की दरिन्दों (माँसा हारी पशु) और विशेषकर मुर्दा खाने वाले [मृतक भक्षी] पशुओं की त्वचा से निकलती है, त्वचा नर्मी लिये हुये हो मगर तर न हो और स्पर्श करने से गर्म मालूम हो और तल (सतह) चिकनी और लचकदार हो रोमों के स्थान सुन्दर और सघन बालों से भली भांति ढके हुये होने चाहियें क्योंकि गंजापन रोगी शरीर का चिन्ह है।

फेफड़े—निरोग शरीर के फेफड़े अपना काम बिना किसी कठिनाई के करते हैं। वायु नासिका द्वारा जोकि उनकी स्वाभाविक

रक्षक है श्वाँस द्वारा अन्दर जानी चाहिये। मुखके खुले रखने का स्वभाव चाहे जागृत दशा में हो वा स्वप्नावस्था में रोग का एक प्रमाण है।

किसी कार्य्य में परिश्रम करने की दशा में निरोग शरीर सर्वदा एक प्रकार की थकावट पैदा करके उचित समय पर हमको सूचित करदेता है, कि अब अधिकता की सीमा समीप है। इस प्रकार की थकावट का विचार किसी प्रकार भी कष्ट दायक नहीं होता, प्रत्युतः आनन्द दायक होता है। क्योंकि वह हमको विश्राम लेने की प्रेरणा करता है और अन्त में सुला देता है। आरोग्य मनुष्य की निद्रा मीठी होती है तथा गहरी और गाढ़ी होती है। जागृत होने पर निरोग मनुष्य प्रसन्न और और आनन्दित और सन्तुष्ट प्रतीत होता है। आलसी या क्रोधी नहीं मालूम होता।

यदि किसी निरोग व्यक्ति को मस्तिष्क सम्बन्धि किसी बड़े कष्ट सहने का अवसर प्राप्त होजावे तो वह शीघ्र ही उस न्यूनता की पूर्ति कर लेवेगा। प्रकृति ने हमको आँसू व्यर्थ ही नहीं दिये हैं, किन्तु भीतरी कष्ट को कम करने वाले होते हैं।

यह सब चिन्ह मानुषीय इन्द्रियों द्वारा ज्ञात कर लिये जा सकते हैं, उनमें से अधिकतर तो बिना किसी कृत्रिम यन्त्र की

सहायता के ही दृष्टि से स्पष्ट मालूम होते हैं। इन सब बातों में जीवित व्यक्तियों की दशाओं पर बिचार किया गया है, और उसकी सचाई की जांच हर समय हो सकती है। मृत शरीर के निरीक्षण को मनुष्य शरीर की दशाओं का लक्ष बनाने से कोई ठीक अभिप्राय प्राप्त नहीं हो सकता।

जो कोई उपर्युक्त नियमों की पूर्ति करके पूर्ण आरोग्यता अपने अधिकार में रखता होगा; वही व्यक्ति अवश्य ठीक २ आरोग्य शारीरिक आकृति रखता होगा, और उसका शरीर प्रत्येक प्रकार के विजातीय पदार्थ से अवश्य पवित्र होगा। इस समय तक मुझे किसी एक ऐसे व्यक्ति के प्राप्त होने में सफलता प्राप्त नहीं हुई, जो कि प्रत्येक प्रकार से आरोग्य हो। किन्तु कुछ प्रकार से निरोग मनुष्य मुझे बहुधा मिले हैं, और उन्हीं के ऊपर मैंने निरोग मनुष्य शरीर की आकृति का निरीक्षण किया है।

यह बात विशेष कर विचार करने की है कि आरोग्य व्यक्ति की आकृति भी वही है जो कि हमारे विचारों द्वारा सौन्दर्य्यता के कल्पित चित्र से लग भग मिल जाती है। प्राचीन काल के यूनानी शिल्पियों ने सब से बढ़कर रूपवान् आकृतियें हमको प्रस्तुत की हैं और यही आकृतियें हैं जिनको

कि वर्तमान कालके चित्रकार या शिल्पी अपने लिये आदर्श रूपसे सामने रखते हैं। न कि उन अच्छे खाने पीने वालों पुरुषों व स्त्रियों के मोटे शरीर को जो कि आज कल साधारणतया निरोग शक्ल रखने वाले समझे जाते हैं, कुछ निश्चित चिन्ह ऐसे हैं जो कि निरोग व्यक्तियो की शक्ल में अवश्य मिलेंगे। जैसा कि चित्र संख्या १–३–४–६–और १४ से प्रकट होगा और जिस का वर्णन अब प्रारम्भ करेंगे।

आरोग्य मनुष्य का चित्र

(१) आकृति–निरोग व्यक्ति की आकृति में नख से शिख तक शरीर के अङ्गों में एक उचित सम्बन्ध होता है। यदि हम चित्र संख्या १ व २ की परस्पर तुलना करें, तो हमको तत्काल विदित होगा कि चित्र संख्या १ से एक रूपवान् चित्र का बोध होता है, और चित्र संख्या २ से एक भद्दा और कुरूप शरीर का, चित्र संख्या दो में शरीर फूला हुआ जान पड़ता है और टाँगें धड़ के लिहाज़ से बहुत छोटी हैं क्योंकि धड़ अधिक लम्बा है इस कारण ग्रीवा लग भग लोप ही होगई है।

निरोग शरीर के चित्र में (चित्र संख्या १) शिर-मध्यम दर्जे का है, ग्रीवा-गोल है, न बहुत लम्बी न बहुत छोटी। इस पर [ग्रीवा पर] किसी प्रकार के उभार नहीं मालूम होते हैं और गोलाई में उसकी नाप पिंडली की मोटाई की बराबर है। छाती-महराबदार है। पेडू-उभरा हुआ नहीं है और न धड़ नीचे की ओर लम्बा है। टांगें-बनावट में पुष्ट मालूम होती हैं और न भीतर को और न बाहर को झुकी हैं।

मध्यम प्रकार की आरोग्यता रखने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में निम्न लिखित चिन्हों का लिख देना आवश्यक है:—

मस्तक—बिना सिलवट के हो चिकना हो और उस पर कोई चर्बीली गद्दी [1] न मालूम होती हो।

आंखें—साफ सुथरी हों और उनमें डोरे न हों।

नासिका—चेहरे के मध्य में हुआ करती है शक्ल में सीधी होती है और न बहुत पतली होती है।

१—मनुष्य की त्वचा के नीचे मकुन्या चर्बी का एक परत हुआ करता है। किन्तु यह प्रत्यक्ष में मालूम नहीं होता मगर आंखों के ऊपर बल्कि भौंह के ऊपर एक प्रकार का उभार बहुत से मनुष्यों में न्यून्याधिक मिलता है। यह एकत्रित चर्बी है जो कि रोगी मनुष्यों में अधिकतर प्रतीत होगी, और निरोग मनुष्यों में इस स्थान पर कोई उभार किसी बाहरी पदार्थ का नहीं मालूम होगा।

मुख—सर्वदा बन्द रहता है अर्थात् दिन में और सोने की की हालत में भी ओष्ट उसके लिये सुन्दर ढकने के तौर पर होते हैं और बहुत मोटे न होने चाहियें।

चेहरा—अंडाकार होता है, न कि कोना दार, और सीमा विभाजिनी रेखा [१] स्पष्ट रूप में ठीक कान के नीचे होती है और स्पष्ट प्रकार की यह विभाजिनी रेखा ही है जोकि मनुष्य के चेहरे को सुडौल बनाती है, और सुन्दरता देती है। बहुत से मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा ऐसे चेहरे के सौन्दर्य को जान लेते हैं किन्तु वह स्पष्ट रूप से यह नहीं बयान कर सकते कि यह सुन्दरता किस बात से हुई है।

चिबुक (ठोड़ी)—गोल होनी चाहिये कोना दार कदापि नहीं।

शिर के पीछे भाग को—ग्रीवा से पृथक् दिखलाने वाली एक स्पष्ट रेखा होनीं चाहिये।

१—यह शब्द बहुधा प्रयोग में आवेंगे अतः जान लेना चाहिये कि इनसे उस रेखा से अभिप्राय है, जो कि शरीर के भाग को दूसरे भाग से पृथक् दिखलाती है उदाहरणार्थ चेहरे को ग्रीवा से, ग्रीवा को शिरसे, धड़ को जाघों से, और इसी प्रकार और भी निदान चित्र नं० १—२ को परस्पर इस स्थान पर तुलना करने से भली भांति समझ में आजावेगा।

(२) रंग—चेहरा न तो पीत वर्ण हो न बिना रङ्ग का और न अनुचित दर्जे लाल, और सबसे बड़ी बात यह है कि चमकदार न हो। यूरोप देश निवासियों का वर्ण हलका गुलाबी होता है। चेहरा तरो ताजा तथा प्रसन्न, वृद्धावस्था तक रहना चाहिये।

(३) गति की योग्यता—शरीर की दशा जांचने के लिये उसमें गति करने की योग्यता भी एक आवश्यक वस्तु है, यदि शरीर की प्राकृतिक गति में कोई रुकावट पैदा होजावे तो यह इस बात का चिन्ह है कि शरीर ठीक दशा में नहीं है, और यह प्रकट होता है कि उसमें विकृत पदार्थ एकत्रित हो गया है जिसने कि रुकावट पैदा करदी है।

"साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रैशन" के अनुसार निदान करने में शिर की गति क्रियायें विशेष विचार के योग्य होती हैं। शिर को सर्वदा बिना रुकावट दाहिने और बांये ओर को मुड़ जाने वाला होना चाहिये। जब शिर उठाया जावे तो कण्ठ के समीप किसी प्रकार का तनाव न मालूम होना चाहिये न जब कि शिर झुकाया जावे।

अतः शरीर के रूप, रङ्ग, गति की योग्यता से ही हम उसकी दशा की जांच करते हैं।

शरीर में विकृत पदार्थ का भार

यदि शरीर का रूप रङ्ग ऐसा न रहा हो जैसा कि निरोग शरीर का होना चाहिये, या यदि गति की योग्यता में कुछ त्रुटि होगई हो तो यह इस बात का प्रमाण है कि शरीर में विजातीय द्रव्य का भार होगया है और विजातीय द्रव्य से ही यह भार उत्पन्न होता है, क्योंकि वह ही ऐसा है जो शरीर की दशा को बदल देता है, अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह द्रव्य (जो शरीर से सम्बन्धित नहीं है और इसलिये उसको विजातीय द्रव्य या विकृत पदार्थ १ के नाम से अङ्कित करना उचित है) मनुष्य के शरीर में किस प्रकार प्रविष्ट होता है।

यह द्रव्य शरीर में केवल उसी विधि से प्रविष्ट हो सकता

नोट—(१) इस विषय पर मिस्टर लुईकोहनी रचित "दीन्यू साइन्स आफ़हीलिङ्ग" के भाषानुवाद में विशेष रूप से विवाद किया गया है। जोकि "शर्मा प्रेस सिविल लाइन मुरादाबाद से २॥) रु० में मिल सकती है (डाक व्यय पृथक्) देखिये विस्तृत विज्ञापन इस पुस्तक के अन्त में:—

हैं जिस विधि से कि उसमें किसी अन्य प्रकार का पदार्थ प्रवेश होता है।

आमाशय–फुफ्फुस् [फेफड़ों] और त्वचा द्वारा, द्रव्य शरीर में भीतर प्रविष्ट हो जाता है। अर्थात् फेफड़ों और त्वचा के द्वारा हम वायु को शरीर के भीतर लेजाते हैं, और मुखद्वारा शरीर, ठोस और द्रव भोजन को भीतर लेजा कर आमाशय में पहुंचाता है। जब तक कि हम प्रकृति के अनुयायी रहते हैं तब तक विकृत पदार्थ शरीर के अन्दर प्रवेश नहीं पा सकता, यदि आकस्मिक प्रविष्ट भी हो जावे तो शीघ्र वहिष्कृत कर दिया जावेगा। क्योंकि प्रकृति ने हानि पहुंचाने वाले पदार्थों के दूर करने के लिये पूर्व से ही कारण उत्पन्न कर दिये हैं। अन्तड़ियां, मूत्राशय (मसाना), त्वचा और फेफड़े, निरोग शरीर में प्रतिक्षण काम करते रहते हैं, और प्रत्येक वस्तु को जो उसके काम की नहीं है, या काम की नहीं रही है, दूर करते रहते हैं। परन्तु यदि विकृत पदार्थ का अति अधिक परिमाण शरीर में प्रवेश हो जाता है तो शरीर उसको वहिष्कार करने के योग्य नहीं रहता, और इस कारण द्रव्य का कुछ भाग शरीर में शेष रहजाता है।

अधिकतर व्यक्ति जन्म से पूर्व ही विकृत पदार्थ से भरे हुए और बहुधा इस क़दर लदे हुए होते हैं, कि वह जन्म दिन

से ही रोगी सूरत के होते हैं। ऐसे बालकों में से प्रति सैकड़ा अधिक संख्या में युवावस्था में ही मर जाते हैं। मनुष्य का प्रारम्भिक भोजन (दुग्ध) बड़े महत्व का पदार्थ है, यदि यह स्वाभाविक है तो शरीर भी प्रकृति के नियमानुसार बढ़ता है। स्वाभाविक भोजन केवल माता का दुग्ध ही है। किन्तु दुर्भाग्य से बहुत से बच्चों को यह खुराक नहीं मिल सकती ; क्योंकि बहुधा माता का शरीर विकृत पदार्थ से इतना भरा होता है कि दुग्ध पैदा ही नहीं होता। तब उसके स्थान में किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है, यद्यपि यह माता के दूध का पूरा २ काम कभी नही दे सकती। प्रारम्भ के कुछ महीनों में इस स्वाभाविक खुराक के बदले में सर्वोत्तम पदार्थ निरोग बकरी या गाय का बिना पकाया हुआ दूध होता है। पकाये हुये दूध और विशेष कर "सावसलेट" साहिब के यन्त्र द्वारा शुद्ध किये हुए दूध के हानिकारक प्रभाव के लिये चित्र संख्या ४६ से ५१ में जो असल फ़ोटोग्राफ़ से नक़ल की गई हैं, स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

अस्वाभाविक पदार्थ कभी भी भली भांति नहीं पच सकता, और यदि नित्य प्रति खाया जावे तो उपर्युक्त वर्णित दशायें प्राप्त होती हैं। क्योंकि शरीर अनुपयोगी पदार्थ को उचित रीति से वहिष्कृत करने योग्य नहीं होता। शरीर इस अवसर

पर इस कारण से कि वास्तविक पालन पोषण करने वाले पदार्थ की "न्यूनता होती है, हानि उठाता है।

विकृत पदार्थ प्रारम्भ में शरीर के छिद्रों (रोम रन्ध्रों) के निकट एकत्रित होता है, और सम्भव है कि कुछ समय तक छोटे २ क्राईसिस द्वारा यथा- दस्त और पसीना की अधिकता, और मूत्र आने से निकलता रहे। इस विधि में वस्तुतः विकृत पदार्थ की बड़ी २ राशि भी शरीर से निकल जाती हैं। परन्तु फिर भी कुछ न कुछ प्रायः रह जाता है। अथवा नवीन पदार्थ एकत्रित हो जाता है। जिन स्थानों पर विकृत पदार्थ इकट्ठा होता है वहाँ सख्त १ गर्मी पैदा होजाती है। यही ग्रहिणी का (दस्तों के आने का) अति घनिष्ठ कारण है। और विकृत पदार्थ में जो एक प्रकार का परिवर्तन हो जाता है, उसका भी यही कारण है, सड़न प्रारम्भ होजाती है और बुख़ारात २ (अबख़रे) उठने लगते हैं (पैदा होने लगते हैं) यह बुखारात शरीर में चढ़ते हैं, और कुछ तो खाल के द्वारा निकल जाते हैं, और कुछ

नोट—(१) अर्थात् वह सख़्त गर्मी जो कि विकृत पदार्थ के जमा होने के कारण उन स्थानों पर पैदा हो जाती है जहां कि विकृत पदार्थ एकत्रित हो गया है।

नोट—(२) वह परिमाणु जो सड़न अथवा गर्मी से किसी वस्तु में उठते हैं।

फिर दृढ़ दशा में एकत्रित हो जाते हैं, यही एकत्रित पदार्थ शरीर में विकृत पदार्थ रूपी भार ३ बन जाते हैं। यह भार भिन्न २ प्रकार के हो सकते हैं जिनकी निर्भरता उस मार्ग (शरीर के उस पार्श्व) पर है जो कि विकृत पदार्थ के एकत्रित होने ने ग्रहण किया है। यदि आमाशय और आँतें एक वार निर्वल हो जाती हैं, और विकृत पदार्थ उन में बस जाता है, तो फिर आरोग्यवर्द्धक और प्राकृतिक भोज्य भी उचित रीति से नहीं पचता। सम्पूर्ण पदार्थ जो इस रीति पर पूर्ण रूप से शरीर के अङ्ग नहीं बन जाते, वह विकृत पदार्थ हो जाते हैं। यदि इस प्रकार एक बार विकृत पदार्थ एकत्रित होना प्रारम्भ हो जाता है, तो फिर शीघ्र २ इकट्ठा होने लगता है, और शरीर में उपरोक्त प्रकार के दोष साधारणतया क्रमशः उत्पन्न होने लगते हैं, बच्चों के अगणित रोगों का यही कारण है। जिन रोगों का कि अभिप्राय केवल यही होता है कि शरीर से विकृत पदार्थ बाहर निकाला जावे।

विकृत पदार्थ बहुधा फेफड़ों और त्वचा द्वारा भी शरीर में प्रवेश होता है, और यद्यपि ऐसा पदार्थ प्रायः तत्काल फिर ब-

---

नोट—(३) विकृत पदार्थ के भार का विस्तार पूर्वक वर्णन इस पुस्तक में आगे किया गया है।

चित्र सं० १ * निरोग मनुष्य का चित्र।
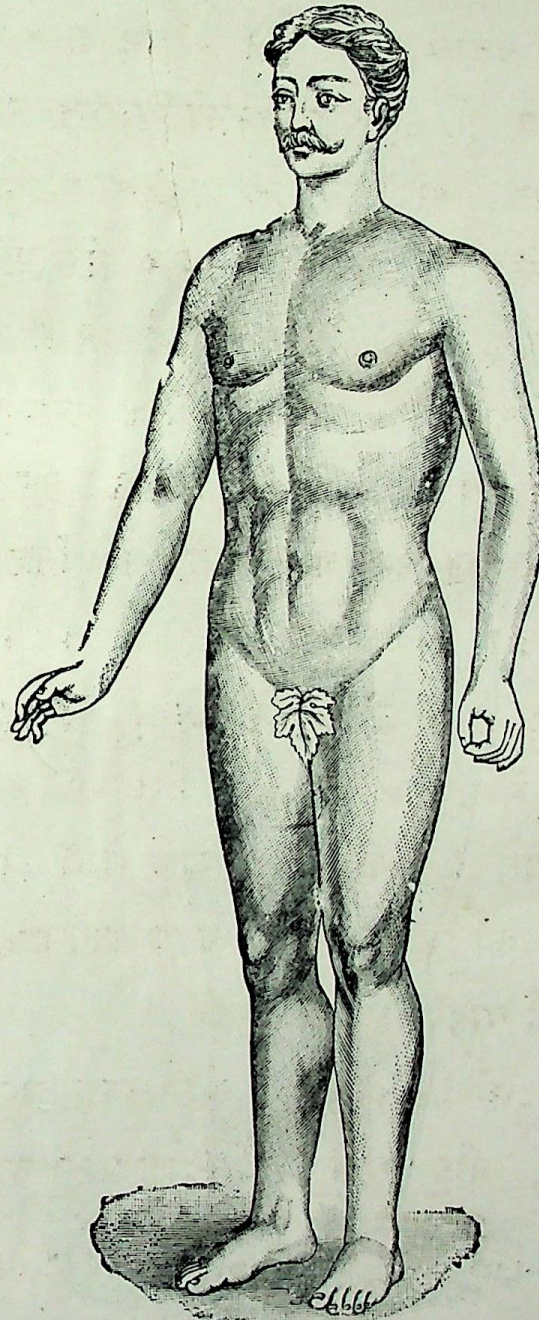
सम्पूर्ण शरीर में अति उत्तम अनुपात, एक ही प्रकार के दो अङ्गों का पूर्ण रीति से एकसां होना, प्रत्येक स्थान पर अँग में सुन्दर गोलाई।

शिर–मध्यम डील डौल का। **मस्तक**–चिकना, किसी प्रकार की चर्बी की गद्दी का न होना। **नेत्र**–बड़े और स्वतन्त्रता पूर्वक गति करने वाले। **नासिका**–बनावट में सुन्दर। **मुख**–बन्द। **चेहरा**–अंडाकार और शिर और ग्रीवा की सीमा विभाजिनी रेखा स्पष्ट रूप से कान के नीचे। **ग्रीवा**–गोल और मध्यम दर्जा लम्बी। **छाती**–खूब चौड़ी और उभरी हुई। **टाँगें**–सीधी पट्ठेदार अर्थात् पट्ठों से भरी हुई, जँघाओं पर सीमा विभाजिनी रेखा स्पष्ट रूप से दृष्टि पड़ती है।

चित्र सं० २ * समस्त शरीर का विकृत पदार्थीय भार ।
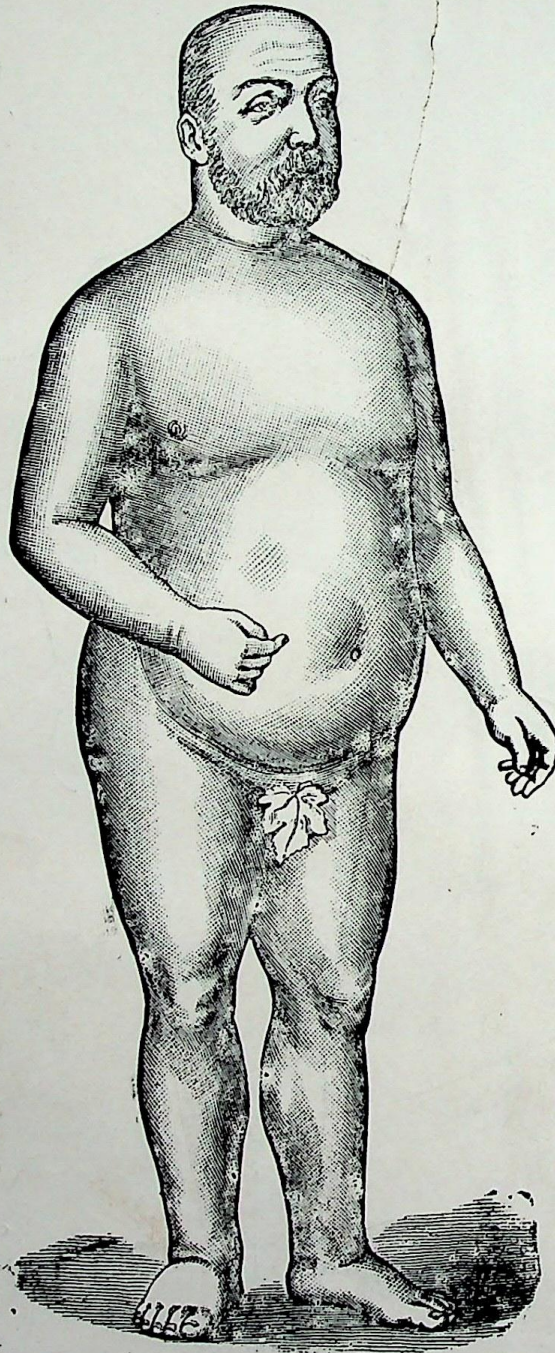
आकृति–भद्दी, बेडौल, फूली हुई । शिर–अधिक मोटा और भारी । मस्तक–दबा हुआ चर्बी की गद्दी सहित । तालू–विना बालों का । नेत्र–अर्द्ध खुले हुये । नासिका–फूली हुई । मुख–किसी प्रकार खुला हुआ । चेहरा–चेहरे व ग्रीवा की सीमा विभाजिनी रेखा है ही नहीं । ग्रीवा–अत्यन्त छोटी और बहुत मोटी, और ग्रीवा की पीठ की सीमा विभाजिनी रेखा लुप्त होगई है । पेडू–भोजन की अधिकता से फूला हुआ । टाँगें–अत्यन्त छोटी और बहुत मोटी ।

चित्र सं० ३ * निरोग मनुष्य का चित्र।
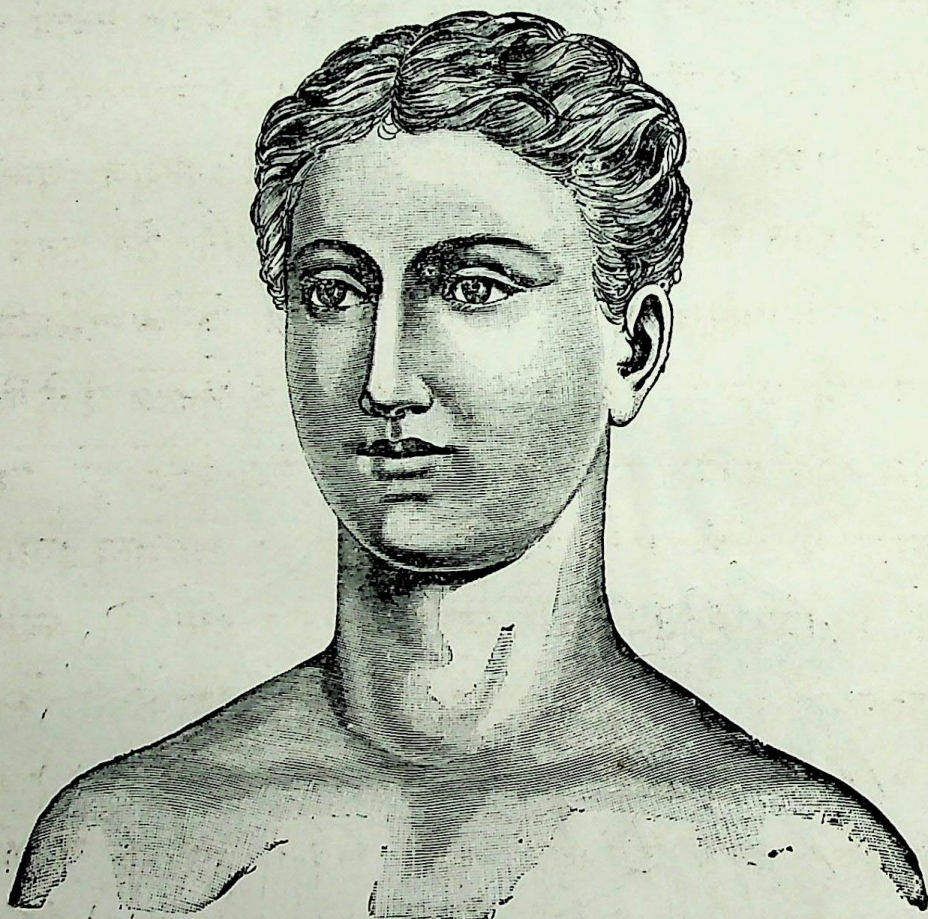
चित्र सं० ४ * निरोग मनुष्य का चित्र ।

हिष्कृत भी करदिया जाता है, तो भी सम्भव है कि वह किन्हीं दशाओं में एकत्रित होकर भार उत्पन्न कर देवे।

अच्छी पाचन शक्ति की दशा में शरीर में इतनी पूर्ण शक्ति होती है, कि वह हर एक प्रकार के विकृत पदार्थ को जिसको कि फेफड़ों ने शरीर के भीतर पहुंचाया हो निकाल दे, किन्तु निर्बल पाचन शक्ति से यह बात असम्भव है। अशुद्ध (गन्दी) वायु में रहने से विकृतपदार्थ को शरीर के भीतर हम उतने ही अधिक परिमाण में प्रविष्ट करते हैं, जितना कि अस्वाभाविक भोजन के खाने से। कभी २ दूषित पदार्थ के निकाल ने के लिये शरीर स्वयं कृत्रिम मार्ग बना लेता है, जैसे बहते हुवे घाव, बवासीर के मस्से, आँत के नासूर, पाँव का पसीजना इत्यादि ऐसी दशाओं में शेष शरीर निरोग मालूम होता है, क्योंकि विकृतपदार्थ के भार से कोई कष्ट तो मालूम नहीं होता। किन्तु यह भली भाँति समझ लेना चाहिये कि ऐसे निकास केवल उसी समय बनते हैं, जबकि शरीर विकृत पदार्थ से पूरे तौर पर लदा हुआ होता है। क्योंकि वह (यों कहना चाहिये) ऐसी जर्राही (चीर फाड़) की क्रियायें हैं जिनकी पूर्ति स्वयं शरीर करता है, और यह दशा केवल उसी समय देखी जाती है जब कि कोई बलिष्ठ जोश दिखाने वाला कारण उपस्थित होता है।

यदि यह निकास अचानक रुक जायें तो वह पदार्थ जो कि बाहर निकल गया होता शरीर के किसी भाग में इकट्ठा हो जाता है। इस अवसर पर एक आश्चर्य जनक परिवर्तन शीघ्र ही दृष्टि पड़ता है, अर्थात् उस भाग में जलन होती है, वरम हो जाता है, या कदाचित् फोड़ा हो जाता है।

मैं इस अवसर पर कुछ रोगियों के वृत्तान्त जोकि मेरे अनुभव में आये हैं आपके समक्ष रखता हूं:—

प्रथम—एक रोगी की घटना है, जोकि दश वर्ष से बवासीरके भीतरी मस्सों के कष्ट में ग्रसित हो रहा था, यह मस्से उसको बड़ा कष्ट देते थे, और अन्त में रक्त निकलने में अधिकता होने के कारण उसने चिकित्सा करने का दृढ़ निश्चय किया, प्रारम्भ में उसने साधारण औषधियों का प्रयोग किया जो उसके कुल वैद्य (डाक्टर) ने बतलाईं। किन्तु सफलता नहीं हुई। एक प्रसिद्ध अनुभवी डाक्टर की सम्मत्यानुसार उसने डरमेटल[१] का अनुभव किया जिसके द्वारा बवासीर के मस्से तत्काल लोप हो गये इसलिये रोगी को यह निश्चय होगया कि मैं स्वस्थ होगया हूं किन्तु थोड़े दिन पश्चात् एक विचित्र प्रकार की सूजन कण्ठ में प्रतीत हुई, जिसकी बाबत वह बिना यह विचार किये हुए

नोट—(१) एक औषधी का नाम है।

न रह सका, कि इसका किसी न किसी प्रकार से मस्सों के अकस्मात् लोप होने से सम्बन्ध है। यह गले की सूजन इतनी अधिक बढ़ी कि कुछ मास के पश्चात् दम घुटने का भय होगया, और रोगी की दशा शोचनीय होगई। यह सब कार्यवाही जो कि होती रही थी बिलकुल स्वाभाविक थी। मस्सों के लोप होजाने के पश्चात् विकृत पदार्थ ने आंतों से बाहर निकालने का मार्ग न पाने के कारण ग्रीवा में अपने जमा होने के लिये स्थान पसन्द किया। यदि यह पदार्थ पीठ पर होकर मस्तिष्क को चढ़जाता तो निश्चय मस्तिष्क की ख़राबी पैदा होजाने का परिणाम अवश्य होता।

अब रोगी ने अपने कुछ मित्रों के अनुरोध से फ्रिक्शन बाथ १ का अनुभव किया, क्योंकि दम घुटने के भय ने उसको प्रत्येक सम्मति के स्वीकार करनेपर जोकि उसको दी जाती, उतारू कर दिया था। प्रथम स्नान ने ही इसको बहुत धैर्य दिया। यह धैर्य निस्सन्देह इस कारण से हुआ कि विकृत पदार्थ जोकि हाल ही में एकत्रित हुआ कड़ा था नहीं होने पाया था नहीं तो अबकी अपेक्षा आराम होने में उन्नति शनैः शनैः होती।

नोट—(१) एक प्रकार का स्नान है देखो "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीनविद्या" नामक पुस्तक में इस स्नान का पूरा नाम फ्रिक्शन हिप बाथ है।

दूसरी घटना एक ३० वर्षीया स्त्री की है जो कि दस्तों की बीमारी में अधिक समय से ग्रसित थी, इससे यह प्रगट होता था कि विकृत पदार्थ से अधिक भरे हुए शरीर का स्वयं यह यत्न उस द्रव्य को बाहर निकालने के लिये है। उस वैद्य ने जिससे ग्रहिणी रोग की चिकित्सा कराई गई दस्तों के रोग से औषधि प्रयोग द्वारा मुक्त कर दिया, किन्तु उसके पश्चात् कठिन कोष्ट बद्ध [सख्त कब्ज़] होगया। अब विकृत पदार्थ ऊपर की ओर चलने लगा और तीन सप्ताह के अन्दर ग्रीवा पर एक बड़ी सूजन हो गई। अर्थात् ऐसी, जैसी कि चित्र सं० १२ में दिखलाई गई है। रोगिणी को यह तत्काल प्रगट हो गया कि यह औषधियों के नुसखे ही हैं जिनके कारण यह गूमड़ी पैदा हुई और औषधि के सच्चे मूल्य(गुण) के सम्बन्ध में उसकी आँखें खुलगई।

दस्त बन्द होने के पीछे ग्रीवा की सूजन अकस्मात् पैदा होने के बजाय यदि अधिक देरी से पैदा होती तो रोगिणी को निस्सन्देह प्रयोग की हुई औषधिपर विश्वास हो जाता। दुर्भाग्यवश प्रायः मनुष्यों को उन हानियों का जोकि विषैली औषधि कर सकती हैं या वस्तुतः करती हैं, कुछ ख्याल (अन्दाज़ा) ही नहीं है।

पाँव पसीजना बन्द किये जाने से ही गर्दन की सूजन और कभी २ शिर का विकृत पदार्थीय भार उत्पन्न हो जाता है । जिसके साथ कि बेहद घबराहट और मस्तिष्क में फ़तूर (पागलपन) भी हो जाया करते हैं । और प्रायः विकृत पदार्थ फेफड़ा और हृदय या किसी अन्य शरीराङ्ग में चला जाता है। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि भीतरी अङ्गों के अधिक तर रोग और विशेष कर फेफड़ों के क्षय होने का रोग (सिल अर्थात् क्षयी) उपर्युक्त विधि पर बाहरी चिन्हों के दबा देने से होते हैं ।

इसी प्रकार के लक्षणों में खांसी को गिनना चाहिये । जिस में कि विकृत पदार्थ का अधिक परिमाण बलग़म (कफ़) रूप में वहिष्कृत होता है । और यदि फेफड़ों के रोग को औषधियों के प्रयोग से और अनुचित गर्मी से और ताज़ा हवा [के प्रयोग] से रोगी को रक्षित रखकर, खाँसी दबा दी जावे । तो शारीरिक दशा में और विशेष कर फेफड़ों की दशा में एक प्रकार का परिवर्तन मात्र जिसका परिणाम दोषमय है, हो जायगा ।

विकृत पदार्थ सीधा भी रक्त में प्रविष्ट हो सकता है। ऐसी दशा में उसकी अपेक्षा कि साधारण विधि से शरीर में प्रविष्ट हो, अधिक हानि करता है । यथा इस बात का एक बड़ा दृ-

दृष्टान्त साँप का काटना है, जिसमें विष सीधा रक्त में प्रविष्ट होकर उसमें एक प्रकार का जोश और ऊँचे दर्जे का ज्वर उत्पन्न करता हुआ अत्यन्त तेज़ी से अपना काम करता है।

परन्तु यदि साँप के विष की वही मात्रा आमाशय में पहुंचाई जावे तो अधिक हानि नहीं होगी। क्योंकि आमाशय में वह हानिकारक नहीं रहता और उसका कुछ परिमाण आँतों द्वारा बहिष्कृत भी होजाता है। यही दशा पागल कुत्ते के काटने की है।

प्रत्येक प्रकार का विकृतपदार्थ इस भाँति रुधिर में प्रवेश होकर न तो इतनी तेज़ी से काम करता है और न ऐसा प्राण हरण करने वाला प्रभाव उत्पन्न करता है, किन्तु वह सर्वदा हानिकारक अवश्य होता है। यद्यपि आकस्मिक् घटनाओं के कारण शरीर में घावों द्वारा विकृत पदार्थ प्रविष्ट होजाया करता है। किन्तु यह बड़ी शोचनीय बात है जिससे हमको यथा सम्भव सामना करना उचित है, किन्तु ऐसे पदार्थ को इच्छा पूर्वक रुधिर में प्रवेश करना अपराध से कुछ कम नहीं, टीका द्वारा रोग के द्रव्य का शरीर की त्वचा में प्रवेश करना (इन औक्यूलेशन) और गोथन शीतला का टीका लगाना (वैक्सीनेशन) ऐसी भारी भूल है कि जिसका वर्णन इतिहास में भी कठिनता

से ही हो। (प्रायः कह सकते हैं कि) एक पश्चात्ताप करने योग्य यादगार है जिसको कि प्रकाश की शताब्दी ने स्वयं इस प्रकार अपने लिये बनाया है। यदि मनुष्य को शिर से पैर तक रोगी और सर्वदा के लिये दुर्वल होना स्वीकार नहीं है तो यह ठीक समय है कि टीका लगाना बन्द कर दिया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि जो शरीर कुछ निरोग है वह थोड़ा सा विष साधारण रीति पर टीका के स्थान से फिर निकाल सकेगा। और उस स्थान पर सूजन होकर छाला उत्पन्न होजायगा। तो भी विष का कुछ परिमाण प्रायः शरीर में शेष रहजाता है। किन्तु यदि शरीर में शक्ति कम है तो वह विषैले पदार्थ को बहुत कम वहिष्कृत करने योग्य होगा। और इस लिये वह पदार्थ अधिकतर शरीर के भीतर ही रह जावेगा। ऐसी ही व्यक्तियाँ हैं जिनके कि दूसरी या तीसरी बार टीका लगाया जाता है, क्योंकि पहिला "नाकाभयाव" समझा गया।

वास्तव में सफलता तो बड़ी हुई किन्तु दुर्भाग्य से लाभ के बदले हानि हुई क्योंकि शरीर के भीतर वर्तमान विकृत पदार्थ में नवीन विकृत पदार्थ सम्मिलित करदिया गया।

शरीर में विकृत पदार्थ के अस्तित्व से क्या क्या परिवर्तन उत्पन्न होते हैं ?

पर वर्णन हो चुका है कि विकृत पदार्थ अपने एकत्रित होने के लिये अपनी इच्छानुसार स्थान खोज कर लेता है। पेड़ू में निकासों के आस पास विकृत पदार्थ इकट्ठा होना प्रारम्भ होजाता है, किन्तु जैसे ही कि यह कार्यवाही प्रारम्भ हुई। तैसे ही विकृत पदार्थ दूर के अङ्गों की तरफ, जैसे शिर और अन्य अङ्गों की ओर अपना मार्ग बनाना प्रारम्भ कर देता है। और यदि कोई विशेष बात बीच में न आ गई तो यह विभक्त [१] होने की क्रिया अत्यन्त धीरे २ होती रहती है। यह पदार्थ सामान्यतः शरीर के अन्तिम भागोंकी ओर चलने की इच्छा प्रकट करता है, और ऐसा करने में अवश्य है कि वह गर्दन के तँग मार्ग में होकर गुज़रे जिस जगह कि जमा हुआ पदार्थ अति सुगमता से दृष्टि पड़ सकता है। यह विकृत पदार्थ प्रथम तो अपने आपको उस स्थान के

नोट—(१) विकृत पदार्थ का शरीर के भिन्न २ अङ्गों में विभक्त होने से अभिप्राय है।

बढ़ा हुआ होने में (जहाँ कि यह उपस्थित है) प्रकट करता है, फिर उन स्थानों की आकृति सूजन की तरह या छोटे छोटे कुरूप उभार के हो जाती है। कुछ काल पश्चात् वह अपने नीचे दबे हुये अङ्ग को बिलकुल लुपा देता है। और तब शरीर के वह भाग शुष्क हो जाते हैं। और सिकुड़ जाते हैं। अनुभव शून्य देखने वाला इस अवसर पर सहज ही में धोखा खा सकता है और यह विचार कर लेता है कि विकृत पदार्थ का भार नहीं है। किन्तु परीक्षा करने पर कड़ी धारियाँ जिन में कि ग्रीवा (गर्दन) विशेष कर बेढंगी जान पड़ती है प्रकट होजायगी। ऐसी दशा में विशेष कर शिर की गति अनियमित हो जायगी और रङ्गत भी साधारणतया भूरी या ख़ाकी या अधिक रक्तवर्ण होकर अस्वाभाविक हो जायगी। कभी कभी किसी व्यक्ति की साधारण आकृति इस बात के लिये पर्याप्त होती है कि हम विकृत पदार्थ के भार की असली दशा को आरोग्य के मध्यम दर्जे के साथ जांच करलें। किन्तु अन्य दशाओं में रोग के स्पष्ट २ रूप स्थिर करने से पूर्व प्रत्येक स्थान की जाँच ध्यान पूर्वक करनी चाहिये।

शिर और ग्रीवा में उसी प्रकार सूजन पैदा होती है जिस तरह कि पेडू के भीतर, और दोनों स्थानों पर एक ही प्रकार इसमें

वृद्धि होती है। किन्तु कभी २ जब कि ग्रीवा के एकत्रित विकृत पदार्थ बढ़ते हैं तो पेड़ू के भीतर एकत्रित विकृत पदार्थ कम हो जाया करते हैं। और इसके विरुद्ध "जल चिकित्सा" ग्रीवा के एकत्रित विकृत पदार्थ को घटाती है। और उस समय में पेड़ू के भीतर एकत्रित विकृत पदार्थ उसी के (अर्थात् ग्रीवा के विकृत पदार्थ की कमी के) लिहाज़ [१] से बढ़ते रहते हैं।

वह मार्ग जिसमें होकर विकृत पदार्थ पेड़ू से चलकर शिर की ओर जाने में ग्रहण करता है सर्वदा एक ही नहीं होता। कदाचित् वह उन अङ्गों की वास्तविक शक्ति पर निर्भर है जिन में होकर उसे जाना पड़ता है, और किसी प्रकार उस करवट पर जिस से कि कोई व्यक्ति साधारणतया सोया करता हो। अतः सम्भव है कि विकृत पदार्थ शरीर के सामने के भाग में या किसी एक ओर (अर्थात् दाहिनीं या बाँई ओर में) या पीठ में अधिकता से हो। इस कारण हमको तीन प्रकार के विकृत पदार्थ के भार मिलते हैं। अर्थात्:—

नोट—(१) इसका यह अभिप्राय है कि इस जल चिकित्सा में जितनी कमी ग्रीवा में एकत्रित विकृत पदार्थ में होती है उतनी ही पेड़ू के भीतर विकृत पदार्थ में वृद्धि हो जाती है। क्योंकि चिकित्सा द्वारा विकृत पदार्थ ग्रीवा से हट कर पेड़ू में फिर वापिस आता है जहाँ से कि प्रारम्भ में उठकर गर्दन में एकत्रित हुआ था।

(१) शरीर के सामने के भाग का भार, अर्थात् सम्मुख भार।

(२) पार्श्वीय भार [अर्थात् शरीर के दाहिनें या वाम पार्श्व या दोनों पार्श्व का भार]

(३) पीठ का भार।

पार्श्वीय भार निस्सन्देह या तो दाहिनीं ओर होगा या वाम [1] ओर। साधारण बात यह है कि हम को केवल एक ही प्रकार का विकृत पदार्थीय भार नहीं मिलता क्योंकि प्रायः उसमें पेचीदगी, पड़ी हुई होती है। सम्भव है कि सामने [अग्र भागीय भार] का भार और पार्श्वीय भार हो, या पार्श्वीय और पीठ की ओर का भार हो, या कभी २ सम्पूर्ण शरीर में विकृत पदार्थीय भार उपस्थित हो। किन्तु इस अभिप्राय से कि भिन्न २ प्रकार के विकृत पदार्थीय भार स्पष्ट समझ में आजावें हम प्रत्येक पर पृथक् २ विचार करेंगे।

नोट—(१) या दाहिने और वायें अर्थात् दोनों ओर उदाहरणार्थ देखो चित्र सं० १५ ।

[क] सम्मुख भार

(देखिये चित्र सं० ५, ७, और उसके पीछे के चित्र सं० ३६-व ३७ भी)

सम्मुख भार वह है कि जिसका सम्बन्ध पूर्ण रीति से अथवा विशेष कर शरीर के सामने के भाग से हो। निदान चित्र सं० ५ व उसके पीछे के चित्र इस प्रकार के भार (विकृत पदार्थ) को दिखलाते हैं। ठीक २ ज्ञान प्राप्त होने के अभिप्राय से मैंने निरोग मनुष्य की आकृति का चित्र सं० ६ में दिखलाया है और निरीक्षण कर्त्ता को सूचित किया जाता है कि सम्पूर्ण भेदों को ध्यान पूर्वक तुलना [1] करके भली भाँति समझले।

सम्मुख भार होने पर ग्रीवा सामने की ओर साधारणतया कुछ न कुछ बढ़ जाती है। [देखो चित्र सं० ७] और चेहरा बहुत बड़ा और उभरा हुआ हो जाता है। बहुधा केवल मुख ही आगे को निकल आता है क्योंकि कुल विकृत पदार्थ इसी स्थान पर एकत्रित होजाता है। एक अत्यन्त विशेषता की पहिचान वह

नोट—(१) अर्थात् चित्र सं० ६ की तुलना चित्र सं० ५ व उसके पीछे के चित्रों के साथ।

चित्र सं० ५ * सैमुल मार।

शिर–मध्यम दर्जे का । **मस्तक**–झुर्रीदार । **नेत्र**–मध्यम दर्जे के । **नासिका**–मध्यम दर्ज की । **कपोल**–तह पर तह झुर्रीदार । **मुख**–मध्यम दर्जे का । **चेहरा**–आयु के विचार से इस मनुष्य का चेहरा मध्यम कोटिका है, सीमा विभाजिनी रेखा नीचे को अत्यधिक हटी हुई है। **ग्रीवा**–सामने की ओर बढ़ी हुई है, गद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा × ठीक स्थान पर है।

चित्र सं० ६ * निरोग मनुष्य की आकृति।

× यह वह रेखा है जोकि चेहरे को शिर व ग्रीवा से पृथक् प्रकट करती है।

चित्र सं० ७ * सम्मुख भाग।

शिर–मध्यम कोटि का। **मस्तक**–तालू पर बाल नहीं हैं, चर्बीली गद्दी उपस्थित नहीं है। **नेत्र**–भारी, सुस्त। **नासिका**–सुन्दर। **मुख**–नीचे का ओष्ट फूला हुआ। **चिबुक**–(ठोढ़ी) बढ़ी हुई। **चेहरा**–विभाजिनी रेखा कान से अधिकतर पीछे हटी हुई, चेहरे का नीचे का आधा भाग अधिक भरा हुआ। **ग्रीवा**–सामने अधिक बढ़ी हुई, गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा साधारण स्थान पर।

चित्र सं० ८ * सम्मुख भाग व बगल (पार्श्वीय) भाग।

शिर–मध्यम कोटि। **मस्तक**–चिकना बिना चर्बीली गद्दी के। **नेत्र**–मध्यम कोटि। **नासिका**–मध्यम कोटि। **ओष्ठ**–बहुत मोटे। **चेहरा**–सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है, बाईं ओर की अपेक्षा दाहिनी ओर चेहरा अधिक लम्बा और अधिक भरा हुआ। **गर्दन**–सामने बहुत ज्यादह बढ़ी हुई, कुछ ऐसी ही एक ओर, गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर है।

सीमा विभाजिनी रेखा [१] है, जोकि चेहरे को (शिर और गर्दन से) पृथक् प्रगट करती है। जब कि विकृत पदार्थीय भार सम्मुख ओर होता है तो यह सीमा विभाजिनी रेखा, निरोग मनुष्य के इसी प्रकार की रेखा की अपेक्षा अधिक पीछे को हटी हुई होती है। (देखिये चित्र सं० ७ व ८) यदि सम्मुख भार अत्यन्त प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है तो चेहरा फूला हुआ प्रतीत होता है, और मस्तक पर एक प्रकार की चर्बीली [२] गद्दी बन जाती है। किन्तु इस प्रकार की गद्दी हमको पीठ के ओर के भार में भी मिलती है, अतः यह कोई विशेष पृथक् चिन्ह नहीं है। इस से केवल यह पता चलता है कि विकृत पदार्थ का भार मस्तिष्क तक पहुंच गया है।

बहुत सी दशाओं में ग्रीवा पर गुमड़ियाँ बन जाती हैं। (देखिये चित्र सं० १० व ३८) इस से यह प्रगट होता है कि इस समय ही विकृत पदार्थ अधिक कड़ा होगया है और यदि विकृत पदार्थ माँस के पट्ठों को खुराक न मिलने के कारण

नोट--(१) इस रेखा को चेहरे की सीमा विभाजिनी रेखा कहना ठीक होगा।

नोट—(२) यह मस्तक पर एक प्रकार का उभार है जिसमें मस्तक की त्वचा के नीचे साधारण से अधिक चर्बी इकट्ठी होजाती है।

खुश्क होजावे, तो यह सम्भव है कि जबड़े के समीप की सीमा विभाजिनी रेखा फिर ठीक दशा की हो जावे। किन्तु गर्दन पर की गुमड़ियाँ और अस्वाभाविक रङ्ग हमको यह बतलाने को पर्याप्त हैं कि ऐसी दशा १ होते भी विकृत पदार्थ अधिकता से एकत्रित हुआ है।

जिस स्थान पर कि विकृत पदार्थीय भार सामने की ओर होता है, वहां रंगत या तो फीकी या असाधारण लाल होती है। और जो भाग विकृत पदार्थ के भार से अधिक भरे हुवे होते हैं उनमें बड़ा तनाव ज्ञात पड़ता है, और उनकी ज़ाहिरी सूरत चमकदार होती है।

शिर-के गति करने की योग्यता भी एक बड़ी विचार करने योग्य बात है। सम्मुख भार की दशा में शिर स्वतन्त्रता पूर्वक पीछे को नहीं झुकाया जा सकता और इस तरह झुकाने का यत्न करने पर गर्दन में बड़ा तनाव दिखाई पड़ेगा [देखो चित्र सं० ३८] ऐसी दशाओं में वह बड़ी या छोटी गुमड़ियाँ जोकि

नोट—(१) अर्थात् चेहरे की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर होने पर भी केवल उसके विचार से जांच में गलती हो सकती है परन्तु गर्दन की गुमड़ियां और अस्वाभाविक रङ्ग हमको स्पष्ट बतलाते हैं कि शरीर में विकृत पदार्थ का भार अधिक है।

साधारणतः दृष्टि गोचर नहीं होती हैं, इस समय १ में देखी जा सकती हैं।

इस विधि में कुल चेहरा एक ही प्रकार में या विशेष कर उसके कोई २ अङ्ग विकृत पदार्थ की एकत्रित राशि से प्रभावित हो सकते हैं। और कभी २ विकृत पदार्थ का भार केवल एक ही ओर (चेहरे के) होता है, जिसके कारण कि चेहरे का अर्द्ध भाग, शेष दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक भरा हुआ और अधिक लम्बा होता है। [देखिये चित्र सं० ८]

विकृत पदार्थीय भार के परिणामों की निर्भरता पूर्ण तया उसकी असलियत २ पर होती है क्योंकि सम्मुख भार की दशा में शरीर के सामने का प्रत्येक भाग यहाँ तक कि नीचे टाँगों तक प्रभावित होता है। इसलिये अवश्य शरीर के नितान्त भिन्न भागों पर बुराई का प्रभाव पहुंचेगा, लगभग प्रत्येक तीक्ष्ण रोग का होजाना सम्भव है। यथा-खसरा, चेचक, लाल ज्वर, डिफ्थेरिया और फेफड़ों में जलन इस अवसर पर शरीर के सामने के भाग सर्वदा सबसे अधिक प्रभावित

नोट—(१) अर्थात् शिर को पीछे झुकाने में देखी जा सकती हैं।

नोट—(२) अर्थात् इस बात पर कि वह वस्तुतः किस प्रकार का अर्थात् किस ओर का विकृत पदार्थीय भार है।

होंगे। जैसा कि उन फुन्सी फोड़ों से, जोकि बच्चों के रोगों में उभर आते हैं स्पष्ट प्रकट होता है।

बहुत से वह रोग भी जो पुराने अर्थात् बहुत दिनों के (Chronic) कहे जाते हैं, सम्मुख भार से उत्पन्न होते हैं। विशेष कर कण्ठ और ग्रीवा के रोग, और उनसे उतर कर चेहरे के रोग, चेहरे की सुर्खी, चेहरे पर फुन्सी, फोड़ा इत्यादि फूट निकलने को व्यवसायी और अव्यवसायी चिकित्सक सब इसी विभाग में सम्मिलित करते हैं। प्रारम्भ में प्रायः केवल ठोड़ी ही प्रभावित होती है और दाँत गिर जाते हैं। सम्मुख भार की दशा में बहुधा नीचे के दाँत गिर जाते हैं। चित्र सं० ५ व ७ में जो मनुष्य दिखाये गये हैं प्रगट होता है कि उनके दांत समय से पूर्व ही गिर गये थे। कभी २ स्नायु के रोग और नेत्रों के रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं, और जब विकृत पदार्थ का भार शिर की चोटी तक पहुच जाता है तो शिर गंजा हो जाता है, और विशेष कर शिर के सामने वाले भाग के बाल गिर जाते हैं।

"जहां कि विकृत पदार्थीय भार केवल सम्मुख ओर होता है" वहां मस्तिष्क सम्बन्धि दोषों का १ उत्पन्न होना असम्भव है।

नोट—(१) जब कि विकृत पदार्थीय भार केवल सम्मुख ओर को होगा

सम्मुख भार के होते हुए भी शरीरेन्द्रियाँ (शरीर के श्रेष्ठ अङ्ग) चिरकाल तक निरोग रहती हैं क्योंकि विकृत पदार्थ विशेष कर कपोलों पर और ललाट पर एकत्रित होता है ऐसी दशा में उन स्थानों में बेचैनी प्रतीत होगी। विशेषतः शिर पीड़ा और फोड़े फुन्सियाँ और कभी २ चेहरे का लाल बादह, ऋतुओं के परिवर्तन का रोगी पर विशेष कर प्रभाव पड़ेगा। जैसा कि ऊपर वर्णन होचुका है, सम्भव है कि एकत्रित विकृत पदार्थ शनैः २ ऐसी वृद्धि पाता रहे, कि लोग वर्षों से किसी न किसी ऊपर वर्णित रोगों में ग्रसित रहे हों। और कोई बड़ा कष्ट उन को उस समय तक न ज्ञात हो जब तक कि वह भाग जोकि अब तक विकृत पदार्थीय भार को थोड़े सा ही लिये हुये थे, उसके प्रभाव में न आजावें।

इस कुल बात की एक ही चिकित्सा है और वह यह है

तो पीठ की ओर उसका कुछ प्रभाव नहीं होगा, और पीठ की ओर रीढ़ है जिसके बाँस में से प्रत्येक गांठ से भिन्न २ नाड़ियें निकल कर सम्पूर्ण शरीर में फैली हैं और मस्तिष्क में भी गई हैं। जब कि विकृत पदार्थीय भार का प्रभाव बांस पर और उससे निकलती हुई रगों पर पड़ेगा तो उनके द्वारा मस्तिष्क में ख़राबी आना सम्भव है। पीठ की ओर के विकृत पदार्थ के भार से इसी कारण ऐसे २ भयंकर रोग होजाते हैं कि जिन से निरोग होना दुःसाध्य और कभी २ असम्भव और असाध्य भी होजाता है।

कि कारण को दूर कर देवें, क्योंकि विकृत पदार्थ के केवल व-हिष्कृत हो जाने मात्र से ही रोग के चिन्ह लोप हो जाते हैं। इस बात पर और अधिक विवाद पीछे किया जायगा।

मैं इस स्थान पर केवल इतना कहना चाहता हूं कि सम्मुख ओर के विकृत पदार्थ के भार की चिकित्सा अन्य भारों की अपेक्षा अधिक आसानी के साथ होती है, और जो रोग इससे उत्पन्न होते हैं, वह प्रायः घातक नहीं होते। बच्चों के रोग और अन्य बुख़ार वाले रोग जोकि सामने के विकृत पदार्थीय भार से उत्पन्न होते हैं सर्वदा उन्हीं रोगों में गिने गये हैं, जोकि शीघ्र अच्छे होने वाले कहलाते हैं।

जल चिकित्सा से सम्मुख ओर का विकृत पदार्थीय भार बहुधा कुछ सप्ताहों में दूर हो सकता है। जिसके कारण अनेक मनुष्य आश्चर्य करके यह पूछते हैं, कि एक रोगी तो मेरी चि-कित्सा विधि से इतना शीघ्र निरोग होगया वस्तुतः दूसरे को आराम धीरे २ हुआ।

इस प्रकार मैं एक रोगी को जो कि "साई कोसिस" रोग में १८ वर्ष से ग्रसित हो रहा था (जो रोग कि सम्मुख वाले विकृत पदार्थ के भार से उत्पन्न हुआ था) कुछ सप्ताहों ही में पूर्ण प्रकार निरोग कर सका।

चित्र सं० ९ * सम्मुख ओर का विकृत पदार्थीय भार ।

शिर–बहुत बड़ा, विशेष कर उर्ध्व भाग (समय से पूर्व बुद्धिमत्ता को प्रकट करता है) । **मस्तक**–चर्बीली गद्दी लिये हुए । **नेत्र**– कुछ कुछ दबे हुए । **नासिका**–मध्यम कोटि । **मुख**–मध्यम कोटि । **चेहरा**–सीमा विभाजिनी रेखा कान के बहुत पीछे । **ग्रीवा**–मध्यम कोटि की, लेकिन शिर को पीठ की ओर झुकाने में तनाव है और गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर है ।

चित्र सं० १० * सम्मुख ओर व पार्श्वीय विकृत पदार्थीय भार ।

शिर–ऊपर का भाग कुछ अधिक बड़ा । **मस्तक**–ऊपर की ओर चर्बीली गद्दी । **नेत्र**–मध्यम कोटि के । **नासिका**–मध्यम कोटि की । **मुख**–मध्यम कोटि । **चेहरा**–सीमा विभाजिनी रेखा गुमड़ियों से रुकी हुई है । **ग्रीवा**–नाहमवार (समथल नहीं है) । **शिर का पिछला भाग** (विकृत भार से रहित) ।
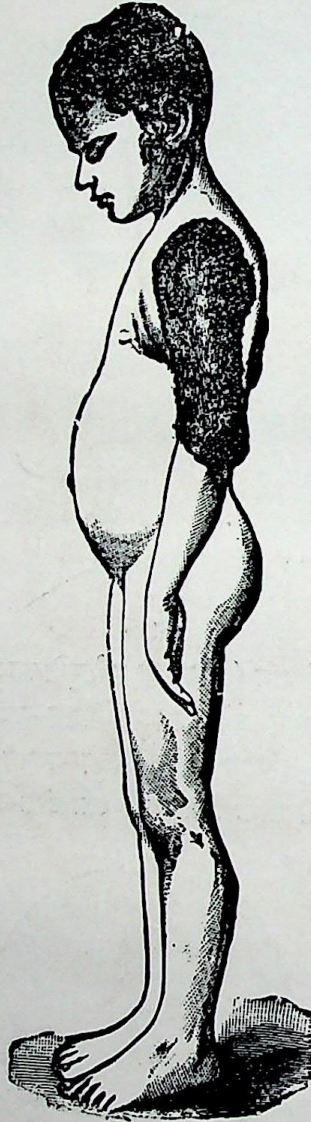
चित्र सं० ११ * सम्मुख ओर का विकृत पदार्थीय भार।
रूप देखने में–शरीर में अँगों का अनुपात मध्यम कोटि का!

शिर–असमथल विशेष कर ऊपर (चाँद पर) । मस्तक–चर्बीली गद्दी मौजूद है। नेत्र–बन्द हैं (अँधा है)। नासिका–मध्यम कोटि की। मुख–मध्यम कोटि। चेहरा–सीमा विभाजिनी रेखा कान के बहुत पीछे। ग्रीवा–सख्त, सीधी, (अर्थात् जो कि आसानी से मोड़ी न जासके)। पेट–बहुत बढ़ा हुआ। शरीर–की त्वचा गोधन शीतला के टीका लगने के कारण फूट निकली है।

चित्र सं० १२ * सम्मुख व पार्श्व की ओर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर–लगभग मध्यम कोटिका। **मस्तक**–मध्यम कोटि। **नेत्र**–मध्यम कोटि। **नासिका**–मध्यम कोटि। **मुख**–मध्यम कोटि। **चेहरा**–सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर। **ग्रीवा**–बहुत बढ़ी हुई, फूली हुई और कड़ी अर्थात् जो कि सरलता से मोड़ी न जा सके।

विकृत पदार्थीय भार केवल गर्दन तक पहुंचा है जिससे घेघा बन गया है, शिर [विकृत पदार्थ से] लगभग बचा हुआ है।

चित्र सं० १३ * सम्मुख ओर और पार्श्व ओर का विकृत पदार्थीय भार।

यह उस स्त्री की लड़की है जिसका चित्र कि सं० १२ में दिखलाया गया है।

शिर–किसी क़दर बड़ा। मस्तक–किसी क़दर गद्दीदार। आँखें–दबी हुईं। नासिका–मध्यम कोटि। मुख–कुछ खुला हुआ। शिर–सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर है। गर्दन–बढ़ी हुई घेंघा मौजूद है।

विकृत पदार्थीय भार प्रायः ऐसा है जैसा कि उसकी माता में है, वस्तुतः विकृत पदार्थ का भाग शिर के भीतर भी पहुंच चुका है।

चित्र सं० १४ * निरोग मनुष्य का चित्र।

स्वाभाविक रीति पर वह अङ्ग जोकि बिलकुल क्षीण हो चुके हैं फिर उत्पन्न नहीं हो सकते। यथा गिरे हुये दाँत अपनी जगह में फिर नहीं जम सकते। किन्तु वर्षों के गंजापन के पश्चात् भी कभी २ बाल जमते हुए मालूम हुए हैं।

[ख] पार्श्वीय भार अर्थात् दाहिनें या बायें ओर का या दोनों ओर का विकृत पदार्थीय भार

(चित्र सं० ८ व १५ और उसके पीछे के चित्र निरीक्षणीय हैं)

पार्श्वीय विकृत पदार्थ के भार से ग्रीवा स्पष्ट रीति से उसी ओर बढ़ी हुई प्रतीत होती है जिस ओर कि (इस भार का) प्रभाव हुआ है। बहुधा कुल स्थान इस ओर के अधिक चौड़े हो जाते हैं, अतः सम्पूर्ण शरीर में अङ्गों का सम्बन्ध असमानुपातीय प्रतीत होता है। यह बात चित्र सं० १७ में स्पष्टतया प्रकट होती है जिसमें कि कुल बाम पार्श्व, दाहिने पार्श्व की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। चित्र संख्या १६ में हम देखते हैं कि चेहरे

की कुल, दाहिनी तरफ़ बाईं तरफ़ की अपेक्षा अधिक लम्बी और अधिक चौड़ी है। यही बात टांगों में भी खूब दिखाई देती है इसी कारण शिर शरीर के बीचों बीच में नहीं है। जिस पार्श्व में उसका प्रभाव हुआ है, उस ओर वह साफ़ रेखा उपस्थित नहीं है, जो कि धड़ और टाँगों को जाँघ के समीप प्रथक् प्रकट करती है, जहां कि अधिक विकृत पदार्थ एकत्रित होगया है, और स्वयं शिर भी क्रमशः एक ओर झुकने का अभ्यासी होता हुआ दिखाई देता है। और ग्रीवा और शिर पर गुमड़ियां पैदा हो जाना भी सम्भव हैं। [देखिये चित्र सं० १८] शिर घुमाने से किसी ओर के पार्श्वीय विकृत पदार्थ का भार स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। ग्रीवा पर उस स्थान पर जहां कि भार का प्रभाव हुआ है, सर्वदा तनाव होता है। प्रायः मोटी २ रगें दिखलाई देती हैं, और बहुधा विकृत पदार्थ के भार का ग्रहण किया मार्ग और वह मार्ग भी जिसे कि वह भविष्य में ग्रहण करेगा, साफ़ २ बतलाती हैं।

पार्श्वीय विकृत पदार्थ के भार से जो हानियें पैदा होती हैं, वह प्रायः सम्मुख भार की हानियों की अपेक्षा अधिक कष्ट साध्य और कठिनाई के साथ आराम पाती हैं। जिस ओर कि विकृत पदार्थ का प्रभाव पड़ा हो उस ओर धीरे २ प्रायः

चित्र सं० १५ * पार्श्वीय भार अर्थात् दाहिनी व बाईं ओर का विकृत पदार्थीय भार।
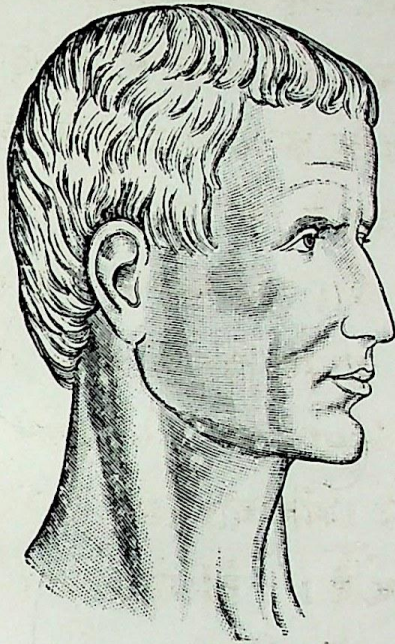
शिर--मध्यम डील का। मस्तक-मध्यम कोटि। नेत्र-मध्यम कोटि। **नासिका**-मध्यम कोटि। **मुख**-मध्यम कोटि। **चेहरा**-चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर। **गर्दन**-दोनों ओर मोटी रगें और सख़्त अर्थात् अकड़ी हुई।

चित्र सं० १६ * पार्श्वीय भार (दाहिनी ओर का)

शिर-मध्यम दर्जे का बाईं ओर को झुका हुआ। **मस्तक**-मध्यम दर्जे का। **नेत्र**-मध्यम दर्जे के। **मुख**-मध्यम कोटि। **चेहरा**-दाहिनी ओर अधिक लम्बा, दाहिनी ओर कोई सीमा विभाजिनी रेखा साथ २ मौजूद नहीं है। **गर्दन**- दाहिनी ओर अधिक लम्बी है और सख़्त और सीधी है।

चित्र सं० १७ * पार्श्वीय भार (बाईं ओर का)

आकृति–(एक तरफ़ी) दाहिने अङ्गकी अपेक्षा वाम अङ्ग अधिक चौड़ा। **शिर**–मध्यम डील डौल का शरीर की मध्य रेखा से हटा हुआ, अर्थात् बीचों बीच में नहीं। **मस्तक**–मध्यम दर्जे का। **आँखें**–मध्यम दर्जे की। **नासिका**–मध्यम दर्जे की। **मुख**–मध्यम दर्जे का। **चेहरा**–चेहरे व ग्रीवा की विभाजिनी रेखा साधारण स्थान पर। **ग्रीवा**–बाईं ओर अति अधिक लम्बी हो गई है; **कंधे**–बाम कँधा दाहिने कँधे की अपेक्षा अधिक चौड़ा। **शरीर**–दाहिनी ओर की अपेक्षा बाईं ओर अधिक चौड़ा, बाइं जांघ और धड़ के बीच की विभाजिनी रेखा नहीं है। **पेड़ू**–विकृत पदार्थीय भार का संग्रह बाम पार्श्व में स्पष्ट प्रकट है। **टाँगें**–बाईं टांग दाहिनी टाँग से मोटी है।

चित्र सं० १८ * प्रत्यक्ष होता है विकृत पदार्थीय भार पार्श्वीय (दाहिनी और बाईं ओर का) और सम्मुख ओर का है।

शिर–किसी प्रकार बड़ा। **मस्तक**–चर्बीली गद्दी मौजूद है। **आँखें**–घुसी हुईं। **नासिका**–मध्यम दर्जे की। **मुख**–बेडौल। **चेहरा**–ग्रीवा और चेहरे की सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है। **ठोड़ी**–बढ़ी हुई। **ग्रीवा**–लग भग लोप हो गई है, दाहिनो ओर मोटी और महसे मौजूद हैं।

चित्र सं० १९ * सम्मुख तथा पार्श्वीय (दाहिनी ओर और बाईं ओर का) विकृत पदार्थीय भार।

शिर-बहुत बड़ा। मस्तक-चर्बीली गद्दी मौजूद है। आँखें-घुसी हुई। नासिका-कुछ अधिक बड़ी। मुख-खुला हुआ। चेहरा-गर्दन और चेहरे की सीमा विभाजिनी रेखा साधारण स्थान पर। ग्रीवा-शिर के बराबर मोटी और (विकृत पदार्थ की) गुमड़ियों का समुदाय है।

दन्त पीड़ा पैदा हो जाती है, क्योंकि दाँत खराब होचुके होते हैं। जब सामने की ओर के और पार्श्वीय ओर के विकृत पदार्थ के भारों में मेल होकर गड़बड़ होजाती है तो प्रायः बहिरापन भी होजाता है। ऐसी दशाओं में एक सूजन जोकि कान तक पहुंच गई हो बहुधा मालूम पड़ती है। आँखें भी शीघ्र ही उस के प्रभाव में आजाती हैं और सम्भव है कि भूरा या स्याह मोतिया बिन्दु उनमें हो जावे, यह जाला सर्वदा सम्भवतः प्रारम्भ में उस ओर से होता है जिस ओर कि विकृत पदार्थ का भार हो गया है।

यदि आधा शिर विकृत पदार्थ से खूब भर जावे तो आधा-सीसी का रोग होजावेगा। सम्भव है कि इस प्रकार की पीड़ायें विना किसी अधिक खराबी दिखाई हुए वर्षों तक झेली जावें, यहां तक कि अन्त को उस स्थान पर विकृत पदार्थ का भार इतना अधिक होजावे कि विवश होकर दूसरे स्थान पर चलने लगे।

इसी प्रकार एक महिला जिससे मेरा परिचय था १५ वर्ष तक बराबर आधासीसी के रोग से कष्ट उठाती रही, और किसी डाक्टर की चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ। उसका नियत किया हुआ डाक्टर केवल इस बात का संतोष करके धैर्य दे दिया करता था

कि कुछ समय में यह [अपने आप] जाता रहेगा। और वस्तुतः १५ वर्ष पश्चात् वह दर्द जाता रहा लेकिन साथ ही साथ दृष्टि भी जाती रही। किसी ने यह विचार तक भी नहीं किया कि आधा सीसी और अन्धेपन के बीच परस्पर कुछ सम्बन्ध था। केवल पश्चात्ताप था तो यह कि पुरानी आपत्ति गई तो एक और नवीन आपत्ति आगई। परन्तु बात बहुत आसान थी अर्थात् विकृत पदार्थ थोड़े ही समय से आँखों तक पहुंच गया था। उसके शरीर की दृढ़ बनावट के कारण उसकी आँखों के प्रकाश का जाना वर्षों तक रुका रहा था।

विकृत पदार्थ का बाम पार्श्वीय भार–त्वचा की क्रिया को बन्द कर देता है, और यह भार दाहिने पार्श्व के विकृत पदार्थीय भार की अपेक्षा अधिक कड़ा होता है। क्योंकि दाहिने ओर के विकृत पदार्थ के भार की दशा में पसीना बहुत आया करता है, जिससे कि विकृत पदार्थीय भार की वृद्धि रुक जाती है। जैसे जहाँ कहीं कि दाहिनी ओर का विकृत पदार्थीय भार उपस्थित है तो वहाँ पर प्रायः पैर पसीजा करते हैं।

अतः दाहिने ओर के विकृत पदार्थ के भार की दशा में भीतरी ज्वर, उस दशा की अपेक्षा कि जिसमें कि शरीर का बाम पार्श्व उससे प्रभावित हुआ हो; कम दिखाई पड़ता है। किन्तु

यदि किसी कारण दाहिने पार्श्व के विकृत पदार्थीय भार की दशा में पसीना रुक जावे तो तत्काल ही दशा भयङ्कर होजाती है।

[ग] पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार

(देखिये चित्र संख्या २० व उसके आगे)

तीनों प्रकार के विकृत पदार्थीय भारों में से पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार सब से अधिक भयंकर होता है। यह पीठ के मार्ग से ऊपर को चढ़ता हुआ रूप में भिन्न २ परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। कभी २ शिर में यह पदार्थ नहीं पहुंचता अपितु पीठ में रहजाता है। जिसका परिणाम किसी न किसी स्थान पर किसी न किसी (अङ्ग के) बढ़न का पैदा होजाना हुआ करता है। इस प्रकार की सूजन (शरीर के किसी स्थान पर) किसी डील डौल में उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो सकती हैं, और भिन्न २ स्थानों पर उनका गुज़र हो सकता है, अर्थात् [सम्भव

है कि] गोल कन्धों से लेकर बड़े दर्जे के कूबड़ [कोहान] हो जावें। किन्तु यदि किसी प्रकार भी विकृत पदार्थ शिर में को न चढ़े तो सौभाग्य समझना चाहिये। क्योंकि यही स्थान है जहाँ कि सबसे अधिक भयङ्कर परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। किन्तु अन्त में विकृत पदार्थ शिर तक पहुंच जाय तो गर्दन के पीछे की गुरिया बढ़ जायगी, और ग्रीवा और शिर के पीछे को विभाजित करने वाली रेखा नितान्त लोप हो जायगी। शनैः शनैः यह स्थान विकृत पदार्थ से भली प्रकार भर जायगा। (चित्र सं० २०, २४, २५, देखिये) शिर के उर्ध्व भाग पर (चोटी पर) चौड़ाई अधिक होजायगी और मस्तक पर चर्बीली गद्दी का दिखाई पड़ना सम्भव है।

सम्भव है कि चेहरे पर भी प्रभाव पहुंचे किन्तु ऐसी दशा में "पदार्थ" शिर की चोटी से (नीचे को) उतरेगा।

पीठ के विकृत पदार्थीय भार के साथ प्रायः सर्वदा बवासीर (अर्शरोग) होती है, और क्योंकि कूल्हों परभी बहुधा प्रभाव पड़ जाया करता है, बहुधा समयों पर गति में लड़ खड़ाहट प्रतीत हुआ करती है।

यदि पीठ के विकृत पदार्थीय भार होने की दशा में तीव्र रोग प्रकट हों तो वह सर्वदा भयंकर प्रकार के रोग हुआ करते हैं,

और वह बहुधा प्राणलेवा सिद्ध हुआ करते हैं। साधारण तया रोगी को अपनी रक्षा के लिये केवल यही विधि है, कि मेरी आविष्कृत विधिपर शीतल जल से बारम्बार स्नान किया करे और खूब पसीना निकाला करे।

किन्तु अधिक ज्वर वाले रोग साधारणतः केवल बच्चों में उत्पन्न होते हैं। युवा पुरुष जो पीठ के विकृत पदार्थीय भार में ग्रसित रहे हों वह बच्चों की अपेक्षा बहुत ही कम इन "क्योरेटिव क्राईसिस" अर्थात् नैरोग्य लाभ करने के अवसरों का अनुभव करते हैं।

दूसरी बात यह है कि युवा पुरुष को उन समस्त अन्य दोष का भय रहता है जो कि पीठ के विकृत पदार्थीय भार से उत्पन्न होते हैं और जो कि उसी दर्जे भयंकर हैं! (जैसा कि क्योरेटिव क्राईसिस)जहाँ एक वार भी शिर में इन रोगों का प्रभाव हुआ तो रगपट्ठों की निर्बलता का (अपने सङ्गियों सहित यथा मस्तिष्क की निर्बलता, स्मरण शक्ति का ह्रास और अनुत्साह के)आजाना सम्भव है। सम्भव है कि मस्तिष्क बिल्कुल अबतर होजावे। पीठके विकृत पदार्थ सम्बन्धि भार होने पर मस्तिष्क में विक्षिप्तता होने का सदैव भय है; और विशेष कर यही अवसर है जहाँ पर कि हम "साइन्सआफ़ फ़ेशियल एक्स-

प्रैशन" का मूल्य ज्ञात करते हैं। जिसके द्वारा कि भयंकर आपत्तिकी पहिचान प्रारम्भ से ही की जा सकती है।

पीठ की ओर वाले विकृत पदार्थीय भारमें ग्रसित मनुष्य प्रारम्भ में मस्तिष्क से तीव्र होते हैं यद्यपि उनमें एक दर्जे तक सर्वदा से बेचैनी रहती है। बच्चे, आयुकी अपेक्षा (इस दशा में) अधिक समझदार होते हैं, किन्तु भविष्य में वह आशायें पूरी नहीं होतीं, जो कि आदि में उनमें स्थिर की गई थीं। वह ध्यान देने में शिथिलता करते हैं और काम में चित्त नहीं लगाते, किन्तु डाक्टर लोग उनमें कोई दोष या त्रुटि का चिन्ह नहीं ज्ञात करते। नव युवकों से जोकि अपनी रगपट्ठों की बेचैनी की दशा से भली भांति परिचित होते हैं, यह कह दिया जाता है कि उनको अपनी बीमारी का केवल भ्रमही है। ऐसे पुरुष शरीर के फूले हुए होने के कारण तथा शरीर की रङ्गत के कारण वस्तुतः आदर्श निरोग समझे जाते हैं।

पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार समय से पूर्व ही मैथुनीय इच्छा को जाग्रत कर देता है, और बच्चों को तथा नवयुवा लड़कों और नव युवती लड़कियों को स्वयं भ्रष्ट होने के लिये बाध्यकर देता है, जिसके कारण क्लीवत्व या बन्ध्यापन शीघ्र ही उत्पन्न होजाते हैं। जो मनुष्य कि पीठ की ओर के वि-

चित्र सं० २० * पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर—किसी प्रकार बड़ा। मस्तक—चर्बीली गद्दी मौजूद हैं। नेत्र—सुस्त और घुसे हुए। नासिका—अग्रभाग बहुत मोटा। मुख—थोड़ा सा खुला हुआ (अर्थात् ऐसा जो प्रत्यक्ष न पड़े)। चेहरा—चेहरे व ग्रीवा की सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है। ग्रीवा—पिछले रीढ़ के समीप वाले भाग पर बिल्कुल भर गई है, और इस स्थान पर सीमा विभाजिनी रेखा वर्तमान नहीं है, शिर दाईं या बाईं ओर नहीं घूम सकता है। पीठ—कँधे गोल हैं।

चित्र सं० २१ * पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर—बहुत बड़ा आगे को झुका हुआ। **मस्तक**—चर्बीली गद्दी मौजूद है। **नेत्र**—किसी प्रकार बड़े, किन्तु भले प्रकार प्रतीत नहीं होते। **नासिका**—मध्यम कोटि की। **मुख व ठोड़ी**—किसी प्रकार बढ़ी हुई। **चेहरा**—चेहरे और ग्रीवा की सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है। **ग्रीवा**—लग भग उतनी ही बढ़ी हुई जितना कि शिर; गुड़िया पर सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है। **पीठ**—कन्धे गोल हैं।

चित्र सं० २२ * पीठ व पार्श्वीय (दाईं या बाईं ओर का)
विकृत पदार्थीय भार ।

शिर–बहुत बड़ा विशेषकर पीछे का भाग । **मस्तक**–बहुत चौड़ा है, चबालो गद्दी मौजूद है । **नेत्र**–मध्यम दर्जे के । **नासिका**–मध्यम दर्जे की । **मुख**–मध्यम कोटिका । **चेहरा**– चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर । **ग्रीवा**–बहुत मोटी, गुड़िया की सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है; एक ओर दूर से बढ़ी हुई प्रतीत होती है ।

चित्र सं० २३ * पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार ।
[यह चित्र सं० २२ वाले पुरुष का युवावस्था का चित्र है]

शिर–लग भग मध्यम कोटि । **मस्तक**–मध्यम कोटि । **आँखें**–मध्यम कोटि । **नासिका**–मध्यम कोटि **मुख**–मध्यम कोटि । **चेहरा**–चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर । **ग्रीवा**–अधिक मोटी; गुड़िया की सीमा विभाजिनी रेखा मिटगई है ।
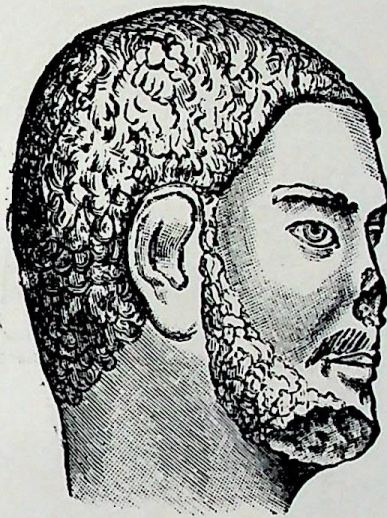
चित्र सं० २४ * पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार ।
[एक ईरानी की पाषाण प्रतिमा का चित्र]

शिर-डील डौल साधारण, किन्तु पीछे की ओर अधिक बड़ा। मस्तक-मध्यम कोटि। नेत्र-मध्यम कोटि। नासिका-पत्थर की मूर्ति की नाक टूटी थी। मुख-मध्यम कोटि। चेहरा-चेहरे व गर्दन की सीमाविभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर। ग्रीवा-अधिक मोटी, गुड़िया की सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है।

चित्र सं० २५ * पीठ और पार्श्वीय विकृत पदार्थ का भार।
(प्राचीन काल के रोम वालों की पाषाण मूर्ति)

शिर–बहुत बड़ा, विशेष कर पीछे की ओर। नेत्र–मध्यम कोटि के। मस्तक–इस पर कुछ २ चर्बीली गद्दी मौजूद है। मुख–मध्यम कोटि का। चेहरा–चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर है। गर्दन–बहुत मोटी; गुड़िया पर अर्थात् पीठ व गर्दन पर सीमा विभाजिनी रेखा मौजूद नहीं है।

कृत पदार्थीय भार में ग्रसित रहते हैं वह लगभग विना किसी अपवाद के सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं होते हैं, और यदि पति व पत्नी में से एकही, पीठ वाले विकृत पदार्थीय भार में ग्रसित हैं या इस प्रकार का भार अधिक नहीं बढ़ गया, तो सन्तान उत्पन्न करना सम्भव है। किन्तु वह दुर्बल होगी, और सचमुच वह प्रायः जीवित नही रहेगी। जिस स्त्री को इस प्रकार का (पीठ के विकृत पदार्थीय भार का) रोग है उसका गर्भ पात हो जाने का खटका है, या समय से पूर्व ही बच्चे उत्पन्न हो जाँयगे, और यदि बच्चे उत्पन्न भी हुए तो वह अपने दूध से उनका पालन पोषण न कर सकेगी।

यदि पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार अपने परिणामों सहित किसी जाति में साधारण होजावे, तो निश्चय यह लक्षण इस बात का है कि वह जाति अवनति कर रही है, और नष्टता के लगभग पहुंचा चाहती है। यह बात अधिक विचारणीय और मनोरञ्जनीय है कि प्राचीन काल के ईरानी लोगों के (अर्थात् फ़ारस वालों के) और रोमियों के शरीर के उर्ध्व चित्रों में जो पत्थर के बने हुए हैं (देखो चित्रसं० २४ व २५) देखने से हमको पीठकी ओर विकृत पदार्थीय भार होनेका प्रमाण मिलता है। निदान „साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रे-

शन" आज हमको उन जातियों के पतन होनेका कारण बतलाता है; यद्यपि वह जातियाँ उच्च कोटि की सभ्यता को पहुंच गईं थीं।

विकृत पदार्थीय भार में ग्रसित मनुष्य बुद्धिके विचार से मन्द होते हैं, और कभी सोचने में देश सम्बन्धि बातों के निर्णय करने के योग्य नहीं होते। उदाहरणार्थ जिस मनुष्य का चित्र सं० ६ में दिया है वह बुद्धि में उन मनुष्यों से जिनके चित्र सं० २० व २१ में दिखलाये गये हैं, निस्सन्देह अधिक है यद्यपि उसको साधारण शिक्षा थोड़ी मिली हो।

पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार धनहीनों की अपेक्षा धनवानों में अधिक होता है क्योंकि धनवान ही भोजन में अत्यन्त असामञ्जस्य करते हैं अर्थात् प्रकृति के विरुद्ध चलते हैं।

प्रत्येक मनुष्य का जो कि पीठ के विकृत पदार्थीय भारमें ग्रसित है यह कर्त्तव्य है कि तत्काल ही चिकित्सा प्रारम्भ करदे। क्योंकि जितनी आयु बढ़ती जाती है उतना ही इस दोष का सामना करना कठिन होता जाता है। इस प्रकार के विकृत पदार्थीय भार में सबसे बुरी बात यह है कि रोगी की शनैः शनैः वह शक्ति जाती रहती है जो नैरोग्य लाभ करने के लिये आवश्यक है। जब तक यह विकृत पदार्थ कोमल और गति करने

योग्य रहता है उस समय तक उसका निकालना सुगम है। किन्तु एक बार जब कि वह कड़ा होकर अधिक स्थिर होगया तो उसके दूर करने के लिये बहुत परिश्रम और धैर्य्य की आवश्यकता है। और कभी २ तो अत्यन्त परिश्रम करने से भी उसका निकालना असम्भव हो जाता है।

[घ] मिश्रित विकृत पदार्थीय भार

(चित्र सं० ८, १८, १६, २६ और उससे आगे के चित्रों का निरीक्षण अपेक्षित है)

जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है, केवल एक प्रकार का विकृत पदार्थीय भार बहुत कम प्रतीत हुआ करता है। साधारणतः दो या सर्व प्रकार के भार एकत्रित मिलते हैं और प्रत्येक प्रकार के विकृत पदार्थीय भार के परिणाम उसके दर्जे के विचार (अर्थात् परिमाण और विस्तार) से एक स्थान पर ही प्रकट होते हैं। बहुधा सामने की ओर का और पार्श्व का विकृत पदार्थीय भार एकही समय में होता है, (चित्र सं० ८, १०, १८, १६ देखिये)

और इसी प्रकार से बहुधा पार्श्वीय भार या पीठ का भार [1] (देखो चित्र सं० २२ व २५); और कभी २ सम्मुख ओर के और पीठ की ओर के विकृत पदार्थीय भार भी एक समय में एकत्रित मिलते हैं।

स्वाभाविक रीति पर सब से अधिक भयंकर दशा उन लोगों की होती है जिनके शरीर के भिन्न २ भाग उस प्रकार के विकृत पदार्थीय भार में ग्रसित होते हैं, जिसको कि सर्व शरीर का विकृत पदार्थीय भार कहते हैं (चित्र सं०२६ व उसके आगे चित्र सं० ३६ व ४० निरीक्षणीय हैं)।

ऐसे मनुष्य हृदय के निर्बल होते हैं, बेचैन होते हैं, असन्तोषी होते हैं, और वहमी होते हैं। अगर उन पर किसी (एक्यूट रोग) तीव्ररोग का आक्रमण होजावे जिसकी कि ओर उनकी तबियत का विशेष कर झुकाव हुआ करता है तो सदैव अधिक खटका होता है। वह मनुष्य शरीर के स्थूल और अत्यधिक भरे होने के कारण प्रायः प्रथम कोटि के निरोग ख्याल किये जाते हैं, और क्योंकि उनमें बाहरी ज्वर बहुत ही कम देखा जाता है, इस से लोग उनके आकस्मिक मर जाने से अचम्भित होते हैं और आश्चर्य करते हैं कि ऐसा "निरोग" मनुष्य

नोट (१)—अर्थात् दाहिने या बांये या दोनों ओर का भार।

चित्र सं० २६ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार विशेष कर बाईं ओर।

शिर–बहुत बड़ा, एक ओर को झुका हुआ। **मस्तक**–अधिक ऊँचा; चर्बीली गद्दी मौजूद। **नेत्र**–चञ्चल। **नासिका**–लगभग मध्यम कोटि की। **मुख**–थोड़ा सा खुला हुआ। **चेहरा**–चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा लोप है अर्थात् अच्छी प्रकार देखने में नहीं आती। **ग्रीवा**–निहायत मोटी, मुख्यकर बाईं ओर।
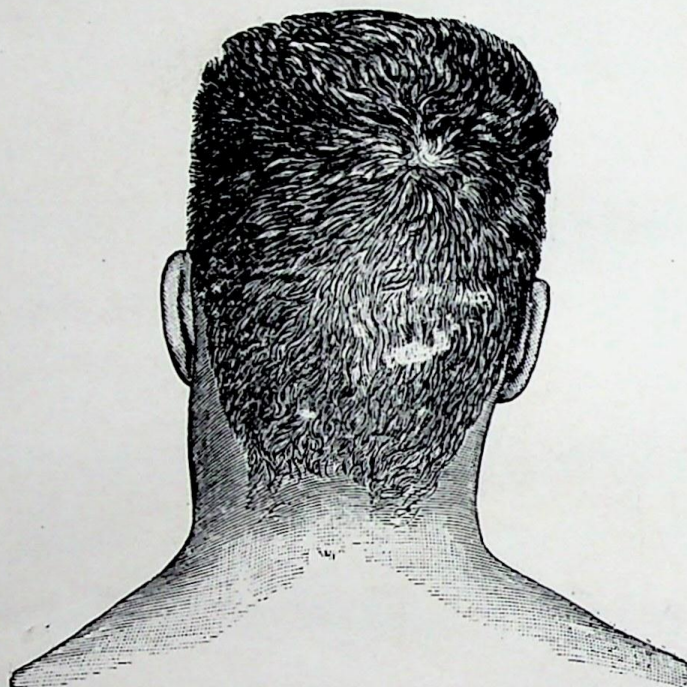
चित्र सं० २७ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।
[चित्र सं० २६ वाले मनुष्य की पीठ की ओर से चित्र)

इस चित्र में हम विशेषकर शिर की वर्गाकार (अर्थात् लम्बाई चौड़ाई बराबर) आकृति और गर्दन की आश्चर्य जनक मोटाई देखते हैं ।

चित्र सं० २८ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर–बहुत बड़ा। **मस्तक**–चर्बीली गद्दी मौजूद। **नेत्र**–मध्यम दर्जे के। **नासिका**–अत्यन्त रतली। **मुख**–कुछ २ खुला हुआ। **चेहरा**–चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा बिल्कुल मिटगई है। **ग्रीना**–चारों ओर बढ़ी हुई, सख्त; गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है (लोप है)।
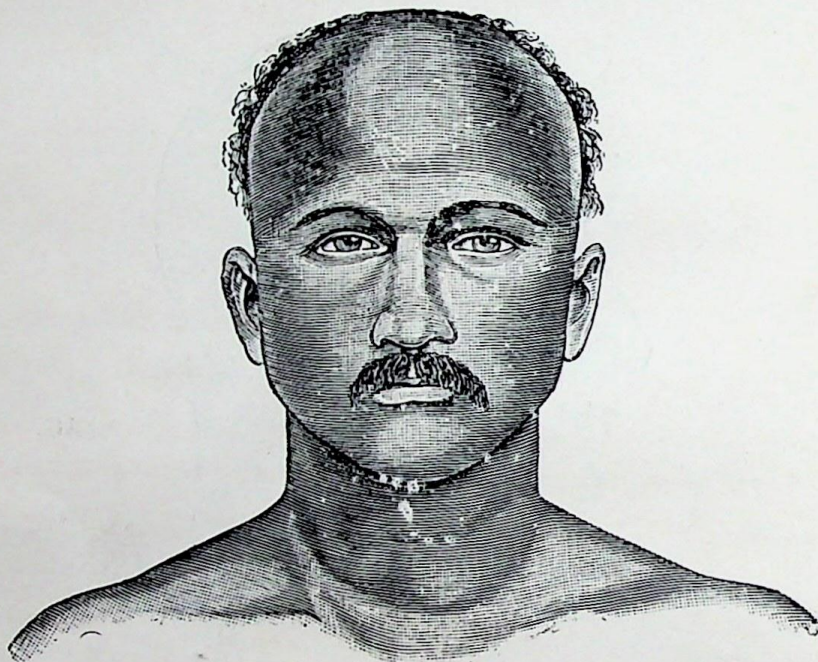
चित्र सं० २६ * कुल शरीर का विकृत पदार्थीय भार।

सर्व शरीर–बहुत बड़ा। मस्तक–चमकीला। आँखें–घुसी हुईं। नासिका–किसी प्रकार अधिक चौड़ी। मुख–कुछ २ खुला हुआ। चेहरा–चौखूंटा, चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है ‡ (अर्थात् दिखलाई नहीं देती)। ग्रीवा–बहुत मोटी, सख्त; गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है * अर्थात् (दिखलाई नहीं देती)।

नोट—‡ अर्थात् चेहरा इतना चौखूंटा है कि सामने से सीमा विभाजिनी रेखा दिखाई नहीं पड़ती।

नोट—* अर्थात् ग्रीवा इतनी अधिक मोटी है कि सीमा विभाजिनी रेखा दिखलाई नहीं देती है।

चित्र सं० ३० ※ सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर–बहुत बड़ा। **मस्तक**–लग भग मध्यम कोटि। **नेत्र**–चञ्चल। **नासिका**–मध्यम कोटि। **मुख**–कुछ खुला हुआ। **चेहरा**–कुरूप ऊपर के भाग की अपेक्षा नीचे का भाग अधिक चौड़ा। चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है। (अर्थात् दिखाई नहीं पड़ती)। **ग्रीवा**– बहुत मोटी।

चित्र सं ३१ ※ सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।
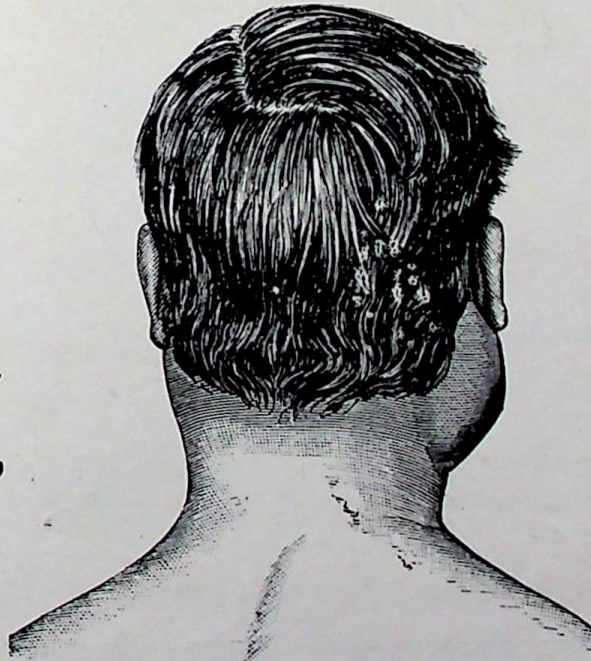
(चित्र सं० ३० वाले मनुष्य की पीठ की ओर का चित्र)।

जिस से कानो के पीछे की अति अधिक सूजन और सख्त ओर बढ़ी हुई मोटी गर्दन देखी जा सकती है।

चित्र सं० ३२ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर—असाधारण ऊपर का भाग अत्यधिक चौड़ा । मस्तक—दबा हुआ । नेत्र—घुसे हुए। नासिका—मध्यम कोटि । मुख—मध्यम कोटि । चेहरा—पीला सफेदी लिये हुए । ग्रीवा—सख्त और कुछ अधिक मोटी ।

चित्र सं० ३३ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।
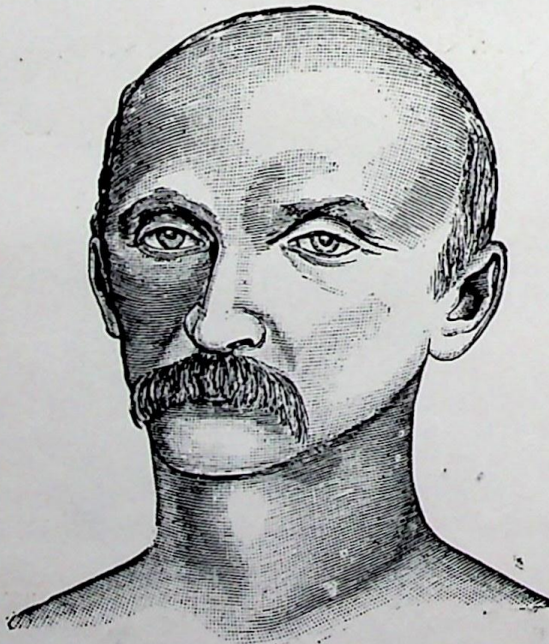
शिर—बहुत बड़ा, ऊपर अधिक चौड़ा, नीचे अधिक पतला । मस्तक—दबी हुई । आँखें—घुसी हुई नासिका—मध्यम कोटि । मुख— मध्यम कोटि । चेहरा—पीला सफ़ेदी लिये हुए बेडौल । ग्रीवा—बहुत बहुत मोटी और कड़ी ।
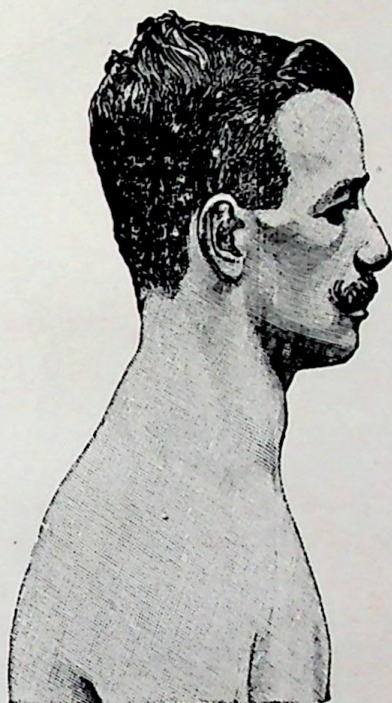
चित्र सं० ३४ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।

रूप—असाधारण, अत्यन्त ढालू कन्धे। शिर—कोनेदार, शिर का पिछला भाग अधिक ऊँचा मस्तक—मध्यम कोटि। नेत्र—मध्यम कोटि। नासिका—मध्यम कोटि। मुख—मध्यम कोटि। चहरा—चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर। ग्रीवा—बहुत मोटी, गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है।
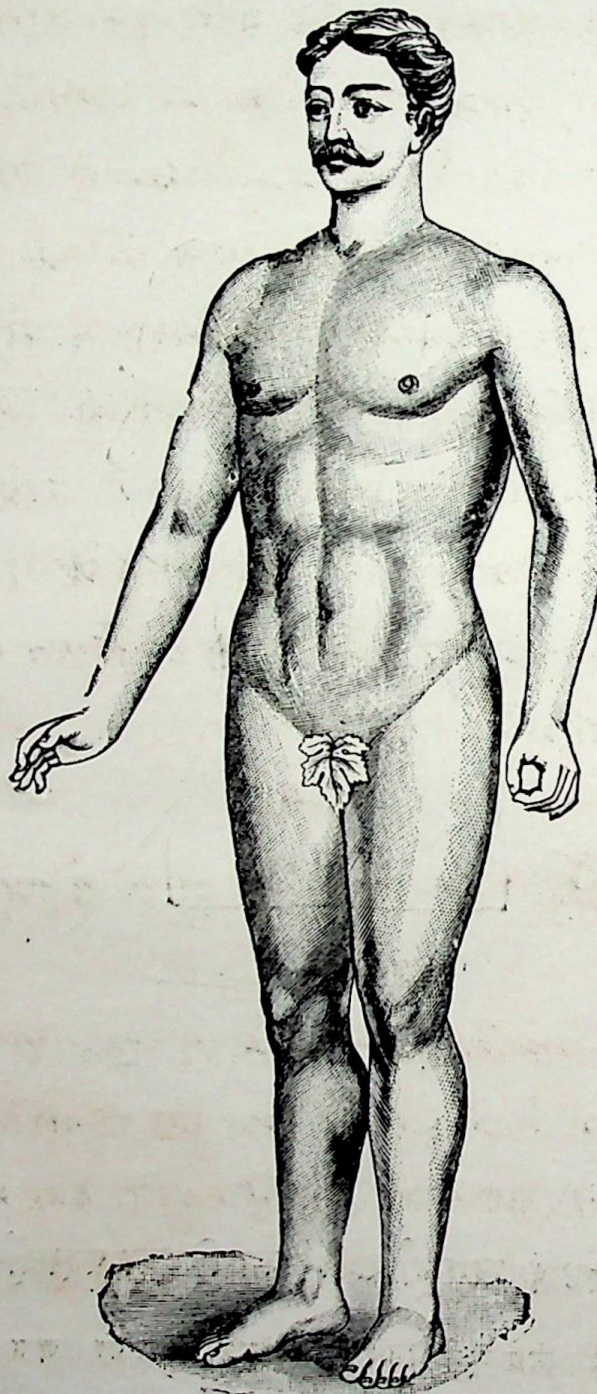
चित्र सं० १ * अर्थात् निरोग मनुष्य का चित्र।

अकस्मात् कैसे भर जा सकता है।

उस समय तक जब तक कि शरीर फूला हुआ है (देखिये चित्र सं० २८) साधारणतः नैरोग्य की आशा है, किन्तु यदि शरीर शुष्क होने लगा है और मुर्झाने लगा है तो दशा अधिक ख़राब समझनी चाहिये, और तब बहुत ही कम सहायता सम्भव है और बहुत सावधानी की चिकित्सा से भी निरोग लाभ का कम अवसर है। प्रत्येक दशा में उसकी निर्भरता आयु और जीवन शक्ति पर है; प्रायः मनुष्यों में ऐसी दशा में भी विकृत पदार्थ के निकालने की शक्ति होती है। किन्तु जिनकी जीवन शक्ति कम है वह कठिनाई से ही विकृत पदार्थ के निकालने योग्य होते हैं।

भीतरी अँगों का रोग

सा कि ऊपर वर्णन हो चुका है, साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन को साधारण वैद्यक नामों से कुछ काम नहीं है। अतः प्रत्येक रोग के लिये एक विशेष नाम नियत करने से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है; तो भी उसमें साधारणतया यह पहिचान कर-

ने की योग्यता है कि भीतरी अङ्गों में से कौन २ अङ्गों पर रोग का अधिक प्रभाव पड़ा है। अब हम उन चिन्हों का जो हमारे पथ प्रदर्शक हैं, और जो परिणाम उनसे हमें निकालने हैं, कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे।

जो कुछ इस पुस्तक में अब तक वर्णन किया जा चुका है उस से ज्ञात होगा कि चाहे किसी प्रकार का विकृत पदार्थीय भार क्यों न हो, भोजन को पचाने वाली इन्द्रियाँ सदैव उसके प्रभाव में आई हुई होती हैं। यही अङ्ग हैं जिनमें कि बीमारी का प्रारम्भ होता है, और जिस हिसाब से कि विकृत पदार्थ उन में स्थान पाता जाता है, उसी अनुपात से उनमें (पाचन शक्तियों या अङ्गों में) अपने कर्त्तव्य के पालन की योग्यता कम होती जाती है। यह सम्भव है कि रोगी को अपने रोगीपन का कुछ ज्ञान न हो, क्योंकि भीतरी अङ्गों की बहुकालीन रोग की दोष युक्त दशा बहुत ही कम दर्द उत्पन्न करती हैं। पाचनेन्द्रियों को अपना काम सदैव इस प्रकार करना चाहिये कि हम को उनके अस्तित्व[१] की ख़बर भी न हो। किन्तु यह दशा कठिनाई से ही किसी की होती है, या यदि होती है तो उन पुरुषों की होती है, जो अपना अधिकतर समय खुले हुए स्थान

नोट [१] उनके होने की अर्थात् उनके वजूद की।

व वायु में व्यतीत करते हैं। बहुधा मनुष्य आमाशय और आँतों के थोड़े २ कष्टों में फँसे रहते हैं, और इन विषयों में यदि अधिक पीड़ा न हो तो वह अपने आप को बड़ा सौभाग्यशाली समझते हैं।

किन्तु ऐसी पूर्ण रूप से शुद्ध पाचन शक्ति, जिसका कि पृष्ठ सं० २३ व २४ पर मैंने वर्णन किया है, विकृत पदार्थीय भार से पूरित किसी भी व्यक्ति में कभी नहीं मिलती। और जहाँ कि विकृत पदार्थ शुष्क होगया हो वहाँ स्वाभाविक रीति पर यह पाचन शक्ति अधिक दोष युक्त होती है, और ऐसी दशा में हम पाचनेन्द्रियों को सड़न से भरा हुआ पाते हैं, जिस से कदाचित् कोष्ठबद्ध (क़ब्ज़) या सम्भव है कि दस्तों की बीमारी हो जावे। यह दोनों दशायें (कोष्ठबद्ध और ग्रहिणी) अन्तरीय हरारत से उत्पन्न होती हैं। आँतों की लुआबदार झिल्ली के शुष्क होने से कोष्ठबद्ध रोग(क़ब्ज़) होता है; तब मल निकल नहीं सकता और उसकी तरी जाती रहती है, और वह आकृति में एक सख़्त वस्तु (गाँठ) हो जाता है। और ग्रहिणी उस समय होती है, जिस समय कि आँतों में इस बात की पर्याप्त शक्ति अवशिष्ट है कि उस मल को जो कि उन में शेष रह गया है निकाल देवें; किन्तु मल, इसके पूर्व ही कि

वह ठीक २ रूप ग्रहण करे, बाहर निकाल दिया जाता है। दोनों दशाओं में भोजन उचित रीति पर शरीराङ्ग नहीं होता, और इसलिये इधर तो शरीर का ठीक पालन भी नहीं होता, और उधर लगातार विजातीय द्रव्य की सामग्री उस में पहुंचती रहती है। इसका परिणाम रक्तकी न्यूनता सम्पूर्ण शरीर की गर्मी (हरारत) का क्षय होना (तपैदिक्) होता है।

तपैदिक्र अर्थात् क्षयी के लक्षण यह हैं—नित्य प्रति निर्बलता की वृद्धि व दुर्बलता का होना; और यहभी बावजूद उस "शक्ति वर्द्धक" भोजन के प्रयोग के है जिसके प्रयोग की ऐसी दशाओं में साधारणतया सिफ़ारिश की जाया करती है। अतः यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि पाचनेन्द्रियों में उनके निजू कर्त्तव्य पालन करने की दशा, भोजन की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। इसलिये पाचन शक्ति के दोष बिना इस बात का विचार किये कि विकृत पदार्थीय भार किस प्रकार का है, तत्काल समझ लेना चाहिये। बाईं ओर विकृत पदार्थ का भार होने पर यह मान लिया जावे कि पाचनेन्द्रियों के वह सब भाग जो बाईं ओर हैं सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं, और उसी ओर दबाव या दर्द कुछ २ समय बाद या लगा तार जान पड़ेगा, इसके विपरीत यदि विकृत पदार्थीय भार दाहिनी ओर

है तो उसी ओर अधिकतर कष्ट मालूम पड़ेगा । पीठ की ओर विकृत पदार्थीय भार होने की दशा में आँतों के पिछले भाग विशेष कर रोग ग्रसित होते हैं, और जैसा कि वर्णन कर चुके हैं, बवासीर के मस्से प्रायः होजाते हैं ।

सामने के विकृत पदार्थीय भार होने की दशा में, अन्य प्रकार के भारों की दशाओं की अपेक्षा पाचनेन्द्रियें भी कम प्रभावित होती हैं । चाहे कष्ट उतनी [१] ही अधिकता से हो अर्थात् दर्द और बेचैनी वैसी ही हो, परन्तु पाचन शक्ति और अधिक खराब नहीं होगी । और "क्योरे टिव क्राईसिस द्वारा" (अर्थात् उनबातों द्वारा जिनको शरीर स्वयं पैदा करता है, यथा-दस्तों का आना इत्यादि) या मेरे आविष्कृत स्नानों द्वारा और सावधानी के साथ जीवन व्यतीत करने से आसानी से नैरोग्य लाभ हो सकता है । पचाने वाले अङ्गो में से एक अङ्ग "यकृत" (LIVER-जिगर) है जो (शरीर में) दाहिनी ओर स्थित है, और जिसमें कि शरीर के इस ओर के विकृत पदार्थीय भार की दशा, में लग भग सर्वदा बिगाड़ होजाया करताहै । तब (श-

---

नोट (१)—अभिप्राय यह है कि सामने की ओर के विकृत पदार्थीय भार की दशा में कष्ट चाहे उतना ही अधिक हो जितना कि अन्य प्रकार के विकृत पदार्थीय भार में होता है ।

रीर की त्वचा का) रङ्ग पीला हो जाता है, क्योंकि यकृत पित्त को रक्त से पृथक् करने योग्य नहीं रहता । दाहिनी ओर के विकृत पदार्थीय भार से जब कि उसके साथ ही त्वचा भी पीलापन लिये हुए हो, प्रायः यकृत के रोग प्रकट होते हैं । यकृत के रोगों का मुख्य चिन्ह और दाहिनी ओर के विकृत पदार्थीय भार की वास्तविक पहिचान " पसीना का अत्यधिक आना है " सब मनुष्यों को जो इस प्रकार का विकृत पदार्थीय भार रखते हैं बहुत शीघ्र पसीना आता है, और इस बात से उनका ही लाभ है ।

बहुधा वह लोग पैरों के पसीजने में ग्रसित होते हैं, और यद्यपि यह [पैरों का पसीजना] अच्छा नहीं मालूम होता, तथापि उस समय तक जब तक कि बाहर निकलने को विकृत पदार्थ शरीर में वर्तमान है, अत्यन्त लाभ दायक है । जबकि यह विकृत पदार्थ बिल्कुल बाहर निकल जाता है तब पसीना स्वयमेव बन्द होजाता है, और इस प्रकार पसीना बन्द होने में कोई भय नहीं होता, इसके विपरीत यदि औषधि प्रयोग से पसीना कृत्रिम रीति पर रोक दिया गया तो कदाचित् उसके भयंकर परिणाम होने सम्भव हैं । क्योंकि विकृत पदार्थ जो पसीना द्वारा बाहर निकलता था इकट्ठा होने लगता है,
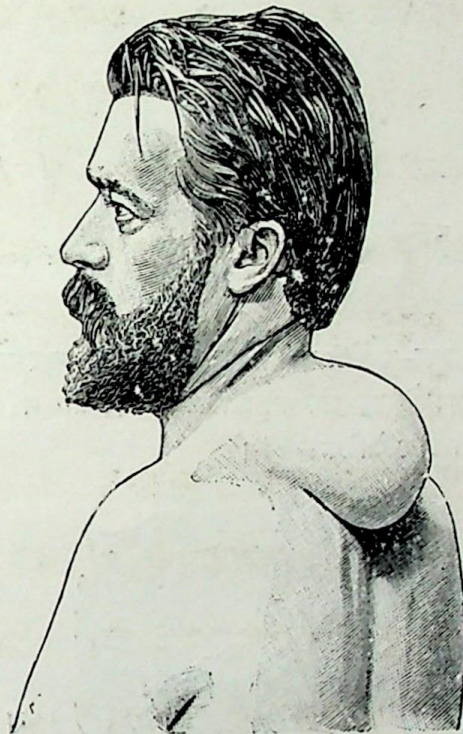
चित्र सं ३५ * पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार ।

शिर–मध्यम कोटि । ग्रीवा–आगे की ओर मध्यम दर्जा, पीछे ओर कुछ अधिक मोटी। पीठ–पीठ पर विकृत पदार्थ की थैली; यही कारण है कि शिर में विकृत पदार्थ का भार कम है ।

चित्र सं० ३६ * सम्मुख और व पार्श्वीय और का विकृत पदार्थीय भार।

(कण्ठमाली बच्चा जिसको स्क्रोफ़्युला रोग है)

शिर—बहुत बड़ा। मस्तक—चर्बीली गद्दी मौजूद है। नेत्र—दबे हुए या घुसे हुए। नासिका—अधिक मोटी। मुख—खुला हुआ। चेहरा—लग भग वर्गाकार, चेहरे और गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा लोप है। ग्रीवा—अधिक छोटी और अधिक मोटी।

चित्र सं० ३७ * सम्मुख व पार्श्वीय भार।

(कण्ठमाली बच्चा जिसको स्क्रोफ़्युला का रोग है)

शिर—बहुत बड़ा। मस्तक—चर्बीली गद्दी मौजूद है। आँख—लग भग मध्यम कोटि। नासिका—बहुत मोटी। मुख—खुला हुआ। चेहरा—लग भग वर्गाकार, चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा लुप्त है। ग्रीवा—अधिक छोटी और अधिक मोटी।

चित्र सं० ३८ * सम्मुख और का तथा पार्श्वीय विकृत पदार्थीय भार ।

[तपेदिक व क्षयी का रोगी]

शिर–डील डौल मध्यम दर्जे के लग भग, नीचे का भाग अधिक चौड़ा । मस्तक–मध्यम कोटि । आँखें–मध्यम कोटि । नासिका–फूली हुई, पुरानी सूजन लिये हुए है । मुख–खुला हुआ । चेहरा–वर्गाकार, चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा लुप्त है । ग्रीवा–गुमड़ियों से भरपूर, सख्त ।

चित्र सं० ३९ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार ।

(क्षयी रोग वाला)

शिर–डीलडौल साधारण दर्जे का । मस्तक–मध्यम दर्जे का । आंख–किसी क़दर गड़ी हुई, सुस्त । नासिका–कुछ २ अधिक मोटी । मुख–खुला हुआ । चेहरा–वर्गाकार, फूला हुआ, सीमा विभाजिनी कोई रेखा दिखाई नहीं पड़ती ।
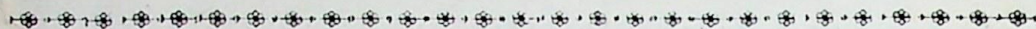
चित्र सं० ४० * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार ।
(क्षयी रोग वाला)

शिर–डौल डौल साधारण कोटि का । मस्तक–चर्बीली गद्दी मौजूद । आंख–सुस्त । नासिका–बहुत मोटी । मुख–खुला हुआ । चेहरा–चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा लुप्त है । ग्रीवा–कड़ी, अधिक लम्बी । छाती–घुसी हुई ।

कोढ़ियों का चित्र।

और सम्भव है कि वह अपने इकट्ठे होने का स्थान किसी कर्मेन्द्रिय में ही पसन्द करे।

गुर्दे—भी पाचनेन्द्रियों से सम्बन्ध रखते हैं, और शरीर में हर प्रकार के विकृत पदार्थीय भार की दशा में उनका रोग के प्रभाव में आना सम्भव है। उनकी दशा उस आर्द्रता से जोकि उन से निकलती है अर्थात् मूत्र से तत्काल जानी जा सकती है। [देखिये पृष्ट सं० २५] और जब विकृत पदार्थीय भार पीठ या बाईं ओर का होता है तो उनकी दशा चिन्तनीय हो जाती है, क्योंकि इस दशा में पसीना अपर्याप्त होता है। ऐसी दशा में नर्म और आर्द्रता से भरी थैलियाँ आँखों के नीचे पैदा होजाती हैं, यह चिन्ह निस्सन्देह गुर्दों के रोग के अस्तित्व का है।

यदि पाचन यन्त्र विकृत पदार्थ से अत्यधिक भर जाते हैं तो जननेन्द्रिय भी [विशेष कर स्त्रियों की दशा में] रोग ग्रसित हो जाते हैं। किन्तु साधारणतया एक पर्याप्त अवधि के पीछे और उसी दशा में जिसमें कि विकृत पदार्थ कठिन प्रकार का होता है, वह प्रभावित हुआ करते हैं। प्रकृति का यह नियम स्पष्टतया इसी लिये है कि सन्तान पर उसका बहुत शीघ्र प्रभाव न पहुंचे। स्त्रियों में जननेन्द्रिय सम्बन्धि रोग

दो विधि से होते हैं, प्रथम—आँत की नाली में विकृत पदार्थीय भार की अधिकता से गर्भाशय दब जाय या एक ओर को हट जाय जिससे कि वह रोग जिसे गर्भाशय का टेढ़ापन या तिर्छापन कहते हैं पैदा होजाता है; द्वितीय-स्वयं जननेन्द्रिय में विकृत पदार्थीय भार हो जावे । परन्तु अन्तिम वर्णित दशा केवल पीठ के विकृत पदार्थीय भार की दशा में देखने में आती है । इस प्रकार का विकृत पदार्थीय भार स्त्रियों में बन्ध्यापन, गर्भ की दशा में कष्ट, और प्रसव में कठिनाइयों का कारण हुआ करता है । दूध की उत्पत्ति भी विकृत पदार्थीय भार के परिणाम के विचार से या तो बन्द हो जाती है या कम हो जाती है । और उपर्युक्त वर्णित पीठ का विकृत पदार्थीय भार भविष्य की सन्तान वृद्धि में बाधक होता है ।

यदि विकृत पदार्थीय भार शरीर के उर्ध्व भाग या अधोभाग में वृद्धि पा जावे, और उसके बहिष्कार करने के लिये पर्याप्त पसीना न निकलता हो तो गठिया रोग का होजाना सम्भव है । ऐसा विशेष कर उस दशा में होता है जिसमें कि बाईं ओर का विकृत पदार्थीय भार वर्त्तमान है, क्योंकि ऐसी दशाओं में शरीर से पसीना भली भाँति नहीं निकलता । अतः यदि शरीर में बाईं ओर का विकृत पदार्थीय भार होतो हमको सर्वदा गठिया का

खटका होना चाहिये। किन्तु यह दशा उसी समय ही होगी जब कि विकृत पदार्थीय भार का परिमाण अधिक हो, क्योंकि जब तक कुल शरीर में उसके अन्तिम [1] सिरों तक विकृत पदार्थ न पहुंच जावे, तब तक वह दुःखदायक चिन्ह जिन्हें गठिया कहते हैं, प्रगट नहीं होते। यह बात साधारणतः शीतोष्ण दशा के एकाएक कम हो जाने से देखने में आती है। शीत से एक साथ ही सिकुड़न पैदा होती है, अतः विकृत पदार्थ बलात् पीछे हटाया जाता है और (लौटने की दशा में) वह जोड़ों के समीप एकत्र होजाता है, और बहुत पीड़ा पैदा करता है। इस प्रकार के गठिया के दर्द सदैव जोड़ से पृथक् हुआ करते हैं, जोड़ के भीतर कभी नहीं होते। यदि एक स्थानीय स्टीम वाथ्ज़ द्वारा पीड़ित भाग के रन्ध्र खोल दिये जावें, और एकत्रित विकृत पदार्थ को हरकत (गति) दी जावे तो उस भाग के विकृत पदार्थ के निकल जाने से पीड़ा दूर हो जायगी।

किन्तु यदि पदार्थ न निकला तो शनैः शनैः वह कड़ा हो जायगा, और वही दशा उत्पन्न हो जायगी जिसको कि वाई (Gout) कहते हैं, जोकि ऐसी गठिया का परिणाम मात्र है जिसको कि आराम नहीं हुआ है। यह रोग उस समय भी

नोट (१)—हाथ, पाँव, त्वचा, शरीर के अन्तिम सिरे हैं।

होता है जब कि गठिया शुष्क गर्मी से दूर की गई हो। यह नैरोग्य, सच्चा नैरोग्य नहीं है अपितु बीमारी की दशा का दब ही जाना है। स्वाभाविक रीति से बाई (गाउट) को गठिया की अपेक्षा अधिक कठिनाई के साथ आराम होता है। गठिया की तरह इससे भी वाम पार्श्व में विकृत पदार्थीय भार प्रकट होता है। वस्तुतः जब हम बाईं ओर का विकृत पदार्थीय भार पावें तो निश्चय पूर्वक गठिया और बाई रोग (गाउट) के पैदा होने की भविष्य वाणी कर सकते हैं। अत्यन्त भयङ्कर वह दशायें हैं जिनमें पीठ का विकृत पदार्थीय भार भी हो, और गुर्दों का भी रोग हो; क्योंकि ऐसी दशा में गुर्दे अपना निजू कर्त्तव्य भली भाँति पूरा नहीं कर सकते, जिसके कारण कि विकृत पदार्थ की अधिक मात्रा जो दूसरी अवस्था में (अर्थात् उस दशा में कि गुर्दों का कोई रोग न होता और वह अपना कर्त्तव्य भली भाँति पालन करते) बाहर निकल जाती, शरीर में ही अवशिष्ट रह जाती है।

बाईं ओर के विकृत पदार्थीय भार में साधारण रीति से हृदय पर भी प्रभाव पहुंचता है, विशेष कर जब कि उसमें सम्मुख ओर का विकृत पदार्थीय भार भी सम्मिलित हो।

फेफड़ों के रोग उन रोगों में से हैं जो सबके सब अति

भयङ्कर कहे जाते हैं। जब रोगी यह ज्ञात करता है कि फेफड़ों में बीमारी का असर आगया है, और जबकि वैद्य या डाक्टर साधारण रीति से फेफड़े का कोई रोग पहिचानते हैं; उस समय शरीर अत्यन्त कठिन रूप से रोग के प्रभाव में आगया होता है। किन्तु "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन" से रोग का निदान इसके बहुत पहिले करलिया जाता है; और यदि समय पर उचित चिकित्सा की जावे तो अन्य रोगों की भाँति उसको सुगमता से आराम हो सकता है। उन व्याख्याओं से जो पहिले की जा चुकी हैं, यह बात स्पष्ट प्रकट है कि फेफड़े अकेले कभी रोगी नहीं होते; आवश्यक है कि प्रथम सम्पूर्ण शरीर में विकृत पदार्थ पहुंच जावे, पूर्व इसके कि फेफड़ों में विचार करने के दर्जे तक उसका प्रभाव पहुंचे। जैसा कि पूर्व वर्णन कर चुके हैं, गन्दी वायु भी फेफड़ों को रोगी नहीं कर सकती, जब तक कि शरीर में विकृत पदार्थ का भार न हो जावे। यह सम्भव है कि फेफड़ों के रोग प्रायः किसी दूसरे रोग की चिकित्सा या औषधियों के परिणाम हैं। विशेष कर उस ज्वर के पश्चात् उत्पन्न होते हैं जोकि औषधियों द्वारा दबाया गया हो। जिस समय तक कि औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वाले चिकित्सक ज्वर के मूल कारण जानने में अनभिज्ञ रहेंगे; उसी समय तक

यह दुष्परिणाम पैदा करने वाली ग़लत चिकित्सा प्रणाली प्रचलित रहेगी, और दुष्परिणाम पैदा होते रहेंगे, जिनमें से फेफड़ों का रोग एक बहुत ही साधारण परिणाम है।

फेफड़ों में विकृत पदार्थ ऊपर से एकत्र होता है अर्थात् शिर और कन्धों से ही उतर कर उस समय आता है जब कि इन १ में विकृत पदार्थीय भार अत्यधिक हो गया हो। कभी कभी शिर (विकृत पदार्थीय भार से) सुरक्षित रहता है और विकृत पदार्थीय भार कन्धों और ग्रीवा से ही होना प्रारम्भ हो जाता है, (चित्र सं० ३८ देखनी चाहिये) इस विधि में विकृत पदार्थ नीचे से ऊपर को और फिर ऊपर से नीचे को भीतरी अङ्गों की ओर चलता है। जैसे कि विकृत पदार्थ ऊपर से उतरता हैं तो प्रायः फेफड़ों के ऊपरी सिरे ही होते हैं, जिन पर की इसका आक्रमण हुआ करता है।

यह बात साधारण तौर पर देखने में आवेगी कि जिन मनुष्यों को यह रोग बढ़कर सिल (क्षई) हो जाती है, वह युवावस्था में हृष्ट, पुष्ट और अच्छे शरीर वाले थे। उस समय भी प्रत्येक मनुष्य उनके शरीर में विकृत पदार्थ का ऊपर की ओर अधिक दबाव और पेडू में गुमड़ियों को देख सकता

नोट—१ अर्थात् शिर व कन्धों में।

रहा होगा। चेहरा आवश्यकता से अधिक सुर्ख और चमकदार था और शनैः २ वर्गाकार होगया था, (चित्र सं० ३७ व ३८ व ३६ देखनी चाहिये) कुछ समय पश्चात् मुख का बन्द रहना विशेषकर सोते समय नहीं रहता। यह बात (मुख का खुलना) प्रारम्भ में तो मालूम ही नहीं पड़ती, लेकिन धीरे २ ओष्टों का फैलाव बढ़ता जाता है। अब नासिका में भीतर ही भीतर किसी कदर जलन हो जाती है, और नासिका व वायु की नाली में पुरानी सूजन व जलन प्रतीत पड़ने लगती है। यह भी सम्भव है कि नासिका भीतर से स्याह पड़ जावे, जिस से कि रोग की बढ़ी हुई दशा प्रगट होती है। जब तक शरीर पुष्ट है नासिका बढ़ती जावेगी तत्पश्चात् पतली पड़ने लगेगी विशेषकर बाँसे पर। उस समय दशा शोचनीय होने लगती है। बहुत सी दशाओं मे शिर पर बहुत ही कम प्रभाव होता है, इस कारण से कि विकृत पदार्थ ने ग्रीवा(गर्दन) में निवास कर लिया; और ऐसी दशा में गर्दन तो लम्बाई में अधिक होजाती है और कंधे दब जाते हैं।

अतः मैं दुबारा कहता हूं कि वह व्यक्ति जिसकी तबियत का झुकाव फेफड़ों के रोगों की ओर होता है, वह प्रारम्भ में फूला हुआ, हुआ करता है जिससे कि ऊपर की ओर का द-

बाव प्रकट होता है। इस दशा में अब यह समय ऐसा होता है कि रोग के प्रारम्भ में उसका सामना करना प्रारम्भ करदिया जावे, विशेषकर बच्चों की दशा में। बड़े शिर वाले कुल बच्चे (चित्र सं० ३७ व ३८ व ४६ व ५१ देखिये) अर्थात् कण्ठमाला वाले सब बच्चों के शरीर में क्षय रोग (सिल) के अङ्कुर उपस्थित होते हैं। सम्भव है कि यह अङ्कुर विजातीय पदार्थ के भार से भरे हुए माता पिता से आये हों या अशुद्ध (नाक़िस) भोजन या जीवन के प्रारम्भ के महीने या वर्षों में औषधि प्रयोग से उत्पन्न हुए हों।

शरीर स्वाभाविक रीति पर विकृत पदार्थ के बाहर निकालने का प्रयत्न करता है; और इसी कारण बहुधा प्रतिश्याय (ज़ुकाम) और खाँसी हो जाती है। यदि इस प्रकार के रोग शीघ्र २ होवें या अधिक देर तक ठहरें तो सदैव तपेदिक़ (सिल) का सन्देह करना चाहिये। नव युवकों का शरीर भी इसी प्रकार विकृत पदार्थ को बाहर करने का प्रयत्न करता है। सामने के भार की दशा में चिरकाल तक प्रायः ऐसी सफलता होती रहती है कि इस प्रकार के विकृत पदार्थ रखने वाले रोग क्षय रोग से पीड़ित होने पर भी अधिक आयु पा सकते हैं। किन्तु जहाँ कहीं कि विकृत पदार्थीय भार पार्श्वीय है और

विशेष कर वहाँ जहाँ कि पीठ की ओर वाला है तो जीवन शक्ति ऐसी गिर जाती है कि उसमें "क्योरेटिव क्राईसिस" के पैदा करने और उसके सहन करने की योग्यता नहीं रहती। यह भी सम्भव है कि शरीर, फोड़ों, नासूर व दुँबल द्वारा और कभी २ छाती व पीठ के दुंबल द्वारा जिनको कारबँकिल (अ-दृष्ट फोड़ा) कहते हैं विकृत पदार्थ निकालने का यत्न करे; यदि उनकी चिकित्सा ठीक विधि से हो तो उनसे शरीर को आराम पहुंचेगा, क्योंकि विकृत पदार्थ की एक अधिक राशि शरीर से पीप की शकल में निकल जाती है। पर-न्तु जिनमें जीवन शक्ति न्यून है उनका विकृत पदार्थ सि-कुड़ कर गुमड़ियों का रूप धारण करलेता है, और यह ही गुमड़ियाँ हैं जिनसे कि फेफड़ों के अन्दर (ट्यूबर किल्स) सिलके दाने बनते हैं। अतः यह सिलके दाने बिना पकी हुई फुड़ियाँ ही हैं, कोई और पदार्थ नहीं हैं, और उनकी उत्पत्ति वहीं होती है जहाँ कि जीवन शक्ति गिरी हुई होती है।

ऐसी गिल्टियों में पीड़ा नहीं होती इसलिये साधारणतः रोगी को बिल्कुल विचार भी नहीं होता कि उसकी दशा कि-तनी भयङ्कर है। हाँ ! शारीरिक निर्बलता तो प्रतीत होती है, परन्तु कोई शारीरिक कष्ट उसके कारण नहीं होता, इस

लिये कोई ख़याल नहीं करता कि मृत्यु कैसी शीघ्र उसके समीप आरही है।

अन्य सर्व प्रकार के उभार भी इस रीति से उत्पन्न होते हैं, चाहे उनका नाम कुछ ही क्यों न हो, जैसे—बवासीर के मस्से, रसौलियाँ, सरतानी गुमड़ियाँ इत्यादि २ यहाँ तक कि प्लेग (ताऊन) की गिल्टियाँ और फोड़े भी इस नियम के विरुद्ध उत्पन्न नहीं होते हैं। इस दशा में भी शरीर अपने तईं शिर से पैर तक साफ़ करने का यत्न करता है किन्तु असली शक्ति की न्यूनता सफल नहीं होने देती अतः दुँबल या रसौलियाँ पैदा हो जाती हैं।

कोढ़ के भयङ्कर रोग का प्रारम्भ भी प्रकट होने वाली उन गुमड़ियों से, जो शरीर के सिरों पर पैदा होजाती हैं, पहचान में आता है। उभार प्रारम्भ २ में उन भागों में दिखाई पड़ते हैं जहाँ कि त्वचा को पसीना आना बन्द हो गया है।

चाहे किसी प्रकार की गुमड़ियाँ क्यों न हों वह सदैव इस बात का चिन्ह हैं कि कुल शरीर सम्पूर्ण रूप से बिगड़ रहा है, और जीवन शक्ति इतनी घट गई है कि शरीर सम्पूर्ण रूप से या खण्ड २ रूप से फोड़ों या बहते हुए घावों के उत्पन्न करने की योग्यता नहीं रखता।

प्रायः विकृत पदार्थीय भार पीठ की ओर बढ़ी हुई दशाओं में ही ऐसा होता है कि उपर्युक्त लक्षण मिलते हैं, यद्यपि साधारण सम्मुख भार में वह बहुत कम दिखाई देते हैं, क्योंकि ऐसी दशा में वास्तविक शक्ति पर बुरा प्रभाव कम पड़ता है।

अब यदि हम आवश्यक शक्ति के बढ़ाने में सफल हो सकें तो गुमड़ियां बढ़कर फोड़े होजावें, और आरोग्यता की उन्नति होजाय, या रोग ही सर्व प्रकार दूर होजाय।

एक सभ्य पुरुष वर्षों से आँखों के रोग में ग्रसित था, और लग भग अन्धा होगया था। उसके शिर पर बहुतायत से गुमड़ियाँ थीं जो प्रति वर्ष संख्या में बढ़ती जाती थीं। उसने मेरे चिकित्सालय में चिकित्सा प्रारम्भ की जिसने कि शरीर की आवश्यक शक्ति को भले प्रकार बढ़ादिया। बड़े २ फोड़े दोनों कपोलों पर पैदा हुए और उनसे उचित परिमाण में पीप निकला। साथ ही साथ आँखों की दशा में अच्छापन होता गया और थोड़े ही समय में वह भली भाँति देखने लगा, यहाँ तक कि थोड़ी दूर से देखने की खराबी भी उसमें नहीं हुई।

एक बीस वर्षीय नवयुवा के हाथों और चेहरे पर बहुत से मस्से थे। क्योंकि उसको ग्रीष्म ऋतु [1] में खुली हुई वायु में

नोट [१]--विलायत की ग्रीष्म ऋतु हमारे देश की शरद ऋतु के बराबर है।

रहने का अधिक अवसर मिलता था । इससे उसका शरीर पुष्ट होगया था इस कारण बिना किसी चिकित्सा के "क्योरेटिव क्राईसिस" होगया । एक बहुत बड़ा फोड़ा उसकी एक भुजा पर निकला और कई सप्ताह तक बराबर उससे पीव जारी रहा । रोगी और उसके मित्रों को आश्चर्य्य में डालने के लिये उसके हाथों और चेहरे के मस्से स्वयमेव लोप होगये । इस अवसर पर शरीर ने स्वयं ही अपनी चिकित्सा ऐसी शक्ति के साथ करनी ग्रहण की कि जो बहुत ही कम देखने में आती है ।

फेफड़ों के क्षय से बहुधा मिलता हुआ कोढ़ का रोग है जो उष्णदेशों में अधिकता से होता है । यह रोग भी विकृत पदार्थीय अधिक भार का परिणाम है और प्रायः किसी दूसरे रोग का फल विशेषकर ऐसे बुख़ार (ज्वर) व उपदंश (आतिशक) का फल है जिनकी चिकित्सा कि औषधियों से हो चुकी हो । जिस स्थान पर उपदंश साधारण रीति से दबा दिया गया हो वहाँ आराम कठिनाई से ही सम्भव है, क्योंकि पारा जिसका प्रयोग औषधियों के चिकित्सक साधारण रीति पर करते हैं, शरीर के भीतर आराम करने वाली शक्ति को बहुत ही निर्बल कर देता है ।

जैसा कि वर्णन हो चुका है, कोढ़ का रोग, स्वाभाविक

रीति पर अन्य रोगों के समान ज्वर सम्बन्धि एक रोग है; और शरीर गुमड़ियों को घुलाने और विकृत पदार्थ के बाहर निकालने का यत्न करता है। यदि वह फोड़ों और नासूरों के पैदा करने में सफल होजाता है तो साथ ही गुमड़ियाँ मिट जाती हैं, और त्वचा जो इससे पहिले शुष्क और चमकदार हो रही थी, फिर ठीक तौर पर आर्द्र होजाती है और उसके रोम छिद्र खुल जाते हैं। यदि शरीर में बहते हुए फोड़े (व्रण) पैदा करने की वास्तविक शक्ति नहीं है तो गुमड़ियाँ डीलडौल में अधिक बड़ी होजाती हैं; या खुश्क हो जाती हैं और गलने लगती हैं, यद्यपि शेष शरीर जीवित दशा में बना रहता है।

पृष्ठ सं० १०५–१०६ में दिये चित्र असली फ़ोटो ग्राफ़ से नक़ल की गई हैं जिससे कोढ़ियों का एक समुदाय प्रकट होता है। उनमें से किसी २ के सम्पूर्ण अङ्ग अब तक ठीक हैं, किन्तु वह ऐसे निर्बल हैं कि केवल हड्डी पसली ही अवशिष्ट रह गई हैं। ऐसे लोगों के निरोग होने की प्रायः आशा नहीं होती, क्योंकि उनमें स्वयं आराम नहीं हो सकता, जैसा कि भली भाँति पोषित शरीर की दशा में, और उस जगह जहाँ कि विकृत पदार्थ शुष्क होना और क्षय होना प्रारम्भ नहीं हुआ है सदैव सम्भव है।

डाक्टर लोग इस रोग को बिल्कुल असाध्य समझते हैं; किन्तु उनका यह विचार इस कारण से हैं कि वह ज्वर और रोग के ज्ञान से प्रायः नितान्त ही अनभिज्ञ हैं। कुष्ट रोग में वह लोग दिखलावटी साफल्यता भी नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि सम्पूर्ण शरीर विकृत पदार्थीय भार से पूरित होता है, और इस कारण उसका कोई भाग ऐसा शेष नहीं रहता जिसमें कि विकृत पदार्थ को किसी स्थान से हटा कर पहुंचा दिया जावे। इसलिये डाक्टरी विद्या अपने अधिकारों को भिन्न २ रीति से काम में लाती है; वह कोढ़ के रोगी को परिवार से बलात् पृथक् करके किसी उजाड़ द्वीप में देश निकाला कर देती है। परन्तु रोग के स्थान या केन्द्र के प्रथक् कर देने पर भी, कोढ़ प्रगट होता रहता है, और डाक्टरों का निदान उसके रोकने के लिये कुछ नहीं कर सकता। एक प्रकार की "बेसिलाई" रोग का कारण बतलाया गया है, किन्तु शरीर के विकृत पदार्थीय भार से भरे होने की दशा के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ है।

साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन का नौसिख (प्रारम्भिक विद्यार्थी) भी आने वाले भय को तत्काल पहिचान लेगा। और वास्तव में शरीर का विकृत पदार्थीय भार से भरा होना, जो रोग से पूर्व आवश्यक है, देख लेना कुछ अधिक कठिन

नहीं है। इस नवीन निदानविधि का फल यह है कि एक व्यक्ति को यह अवसर प्राप्त है कि वह रोगी को उचित समय पर सूचित कर सके, और अदूर दर्शिता के टालमटोल और नितान्त लापर्वाही के परिणाम से उसे सूचित करदे।

इस में कोई सन्देह नहीं कि यदि नवीन निदान विधि की उचित रीत्यानुसार समय पर सावधानी से चिकित्सा प्रारम्भ करदी जावे तो अब भी बहुधा कोढ़ी बचाये जा सकेंगे।

बहुधा पादरी महाशय इस विषय को बड़ी योग्यता से अपने हाथ में ले रहे हैं, और मेरी चलाई चिकित्सा विधि कोढ़ियों को बतला रहे हैं; और अत्यन्त सन्तोष जनक कुछ परिणाम भी प्राप्त हो चुके हैं। यह रोग भी उसी प्रकार से पैदा होता है जिस प्रकार कि अन्य रोग, और इसलिये उन्हीं विधियों से इसका आराम उस समय तक उचित है जब तक कि उपयुक्त वर्णित शरीर में पर्याप्त जीवन शक्ति वर्तमान रहे।

"क्रियात्मक" निदान

ब मैंने पाठकों को वह भिन्न २ चिन्ह बतला दिये हैं जिनसे कि साधारण रीति से रोगों को, और विशेष कर रोग की मुख्य २ दशाओं का निदान हो सकता है। अब मैं अपने पाठकों को इस योग्य बनाना चाहता हूं कि वह "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" को कार्य में लाने की पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेवें ताकि क्रियात्मक रूप से रोगियों के और विशेष कर अपने और अपने कुटुम्ब वालों के रोग का निदान करने के योग्य हो जावें।

वस्तुतः यह अभ्यास ही है जो किसी को पूर्ण प्रकार योग्य (कामिल) बना सकता है; लेकिन निदान की योग्यता अति शीघ्र बढ़ जायगी, यदि अभ्यासी के नेत्र निरोग हों। किन्तु "मैं इस अवसर पर अपनी यह आशा प्रकट करता हूं कि पाठक उन व्यक्तियों को जो प्रसन्नता पूर्वक अपना निदान नहीं कराना चाहते स्वयं उन के निरीक्षण करने से बचें"। ऐसा व्यवहार प्रायः मनुष्य समाज में आक्षेप ज-

नक है, और "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" को बिना आपत्ति में डाले न रहेगा।

अब मैं विस्तार पूर्वक कुछ रोगियों का वर्णन करता हूं जिनका कि निदान मैंने अपने चिकित्सकी के समय में किया है, और साथ ही साथ इस पुस्तक में दिये चित्रों का वर्णन करता जाऊँगा। वस्तुतः चित्रों में मुख्य चिन्ह यथा—रङ्ग और तनाव प्रगट नही किये जा सकते; और प्रायः एकही भाग का भार विकृत पदार्थ से भरे होने का दिखाया जा सकता है। किन्तु जो निरीक्षण वस्तुतः किये हैं ज्यों के त्यों लिखे गये हैं। साराँश यह कि प्रत्येक विषय में परिणाम का समझ लेना है।

(१) कल्पना करो चित्र सँ० ११ में दिखाई हुई लड़की निदान कराने के लिये हमारे पास आती है। प्रथम हम उसकी चाल और रँगत पर विचार करते हैं।

खड़े होने का ढङ्ग और चाल किसी प्रकार अच्छी नहीं है, शिर आगे को झुका हुआ है, रँग पीला है। आँखों की आधी खुली दशा जो कि उनमें विकृत पदार्थीय भार के कारण हुई है हमारे ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करती है। लड़की वस्तुतः न्यूनाधिक अँधी है। हम तत्काल देखते हैं कि हमारी रोगिणी सख़्त बीमार है, और शिर में विकृत पदार्थ का पहिले

ही अत्यधिक भार हो चुका है। अब हम यह विचार करते हैं कि यह विकृत पदार्थीय भार किस प्रकार का है। शिर की ओर एक दृष्टि भी यह बतलाने को पर्याप्त है कि हमारे सामने अधिक सम्मुख भार वाला रोगी उपस्थित है, क्योंकि चेहरे और गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा कानके समीप अपने ठीक स्थान से बहुत पीछे को हटी हुई है। गुद्दी व शिर की सीमा विभाजिनी रेखा लग भग ठीक है, अतः पीठ का विकृत पदार्थीय भार बहुत ही न्यून है।

जबकि शिर ठीक विधि से रक्खा जावे तो यह दशा और भी अधिक स्पष्ट २ ज्ञात होती है। इसके पश्चात् हम रोगी से शिर ऊपर को उठवाकर अधिक ध्यान से विचार करते हैं; एक बड़ा उभार और गर्दन का तनाव दृष्टि आता है। शिर को इधर उधर घुमाने से थोड़ा सा पार्श्वीय भार भी प्रकट होता है, किन्तु तनाव बहुत थोड़ा है। आँखों का रोग सम्मुख भार से हुआ है, और हम निश्चय पूर्वक तत्काल कह सकते हैं कि शरीर के सामने का कुल भाग विकृत पदार्थ का भार लिये हुए है, विशेष कर पेड़ू अधिक निकला हुआ है। किन्तु पार्श्वीय भार इतना अधिक प्रकट नहीं है कि अधिक बेचैनी करे।

शिर में विकृत पदार्थीय भार के बढ़ते रहने से आँखों का

रोग उत्पन्न हुआ है। परन्तु सौभाग्य से हम रोगिणी को यह कह कर सन्तोष दे सकते हैं कि उसके रोग को सहज ही में आराम हो जायगा, क्योंकि उसका रोग पूर्णतया सम्मुख भार से ही हुआ है।

स्वाभाविकतः हमको आँखों की स्थानीय चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, जैसा कि लोग साधारणतः किया करते हैं। किन्तु उसके विपरीत हमारा अभिप्राय पेड़ू के एकत्रित विकृत पदार्थ को दूर करने का होना चाहिये; अतः साथ ही साथ आँखों की दशा में उन्नति होती जायगी और उचित समय में रोग शान्त होजायगा।

बाँह की फ़फ़द (फल जाना या सड़ जाना) निस्सन्देह पाठकों को आश्चर्य्य में डालेगी। यह फ़फ़द कृत्रिम है और टीका लगाने का परिणाम है। बच्चे का रक्त ट्यूबर कोलन का टीका लगाकर पूर्णतः विषयुक्त कर दिया गया है। वस्तुतः परीक्षा करने से यह बात निश्चित नहीं हो सकती; किन्तु इस घटना के कारण (जिस घटना की सूचना हमको रोगिणी की माता ने दी है) हम जानते हैं कि नैरोग्य में बिलम्ब होगा।

इन सब बातों के होते भी थोड़े ही सप्ताहों में फिर दृष्टि प्राप्त हो गई, क्योंकि इस बीच में शिर से विकृत पदार्थ का

भार थोड़ा कम होगया था।

(२) चित्र सं० ३८ के लड़के पर एक दृष्टि डालने से हमको बहुत कम चिन्ह रोग प्रकट करने वाले प्रतीत होते हैं; और सचमुच बहुधा लोग उसको अच्छा निरोग ख्याल करेंगे। उसकी चाल ढाल अच्छी है और रंग अधिक रोग का सा नहीं है यद्यपि वह (अर्थात् उसका रँग) युवापन की तन्दुरुस्ती की दशा की ताज़गी को प्रकट नहीं करता। किन्तु यदि हम निरोग व्यक्ति के चित्र को तनिक विचार में फिर लावें तो थोड़ी सी जाँच हमको यह प्रकट करने के लिये पर्याप्त है कि शिर का ऊपरी भाग (तालू) किस प्रकार अधिक बढ़ा है।

अब हम विस्तार पूर्वक निदान प्रारम्भ करते हैं। पीठ का भार तो है नहीं। चेहरा व ग्रीवा की सीमा विभाजिनी रेखा मध्यम दर्जे पर है, यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति यही कहने को प्रस्तुत होगा कि सम्मुख ओर का भी विकृत पदार्थीय भार नहीं है। निरीक्षण से ग्रीवा के बाईं ओर हमको (छोटी २) ग्रन्थियाँ दिखाई पड़ती हैं और यह हमको अधिकतर साफ़ २ तब प्रतीत होती हैं जब कि रोगी अपना शिर एक ओर को फेरता है। और यदि वह शिर को पीठ की ओर झुकाता है तो आगे की ओर अधिकतर तनाव और सूजन दिखाई पड़ती है। इस अवस्था में

मालूम होता है कि यहाँ पर हमको बाम पार्श्व और सम्मुख भाग के विकृत पदार्थीय भारों से काम पड़ा है।

जितना कि हमको प्रारम्भ में ख्याल था उससे कहीं अधिक यह रोगी विकृत पदार्थीय भार से भरा हुआ है; और विकृत पदार्थ का स्पष्ट रूप से अधिक दबाव और शरीर में ऊँचे दर्जे की भीतरी उष्णता वर्तमान है। विकृत पदार्थ की कुछ मात्रा मस्तक में पहुंच गई है, और कुछ मात्रा गर्दन में एकत्रित हो गई है, और उसने गुमड़ियों का रूप धारण कर लिया है। हमको विश्वास करलेना चाहिये कि न्यूनाधिक यह गुमड़ियाँ पेड़ू में भी हैं; विशेषकर पेड़ू के बाम ओर हैं।

लड़का पसीना की ख़राबी से और विशेष कर दिल की धड़कन से निस्सन्देह कष्ट पा रहा है। और इस कारण उसका हाज़िमा कमज़ोर है, क्योंकि पसीने का प्रभाव सदैव पाचन शक्ति पर पड़ता है।

यदि विकृत पदार्थ बाम पार्श्व में शिर की ओर और ऊँचा चढ़ जाय, तो उसके कारण उसी ओर में आधा सीसी, कर्ण पीड़ा, और बालों का गिरजाना देखने में आयेगा। वर्षों में गुमड़ियाँ शिर पर उत्पन्न हो सकती हैं; और इसलिये कि विकृत पदार्थीय भार बाम पार्श्व में है बाद को गठिया का होजा-

ना भी सम्भव है।

छाती भी सन्देह (ख़तरे) में है, क्योंकि हम देखते हैं कि विकृत पदार्थ ग्रीवा में एकत्रित हुआ है। इस विषय का निपटारा कि विकृत पदार्थ प्रारम्भ में शिर की ओर जायगा या छाती की ओर, उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि हमको कोई पुष्ट चिन्ह न मिले; यथा-खुश्क खाँसी होतो प्रगट होगा कि फेफड़ों पर असर पहुंच चुका है।

निस्सन्देह हमारा काम विकृत पदार्थ को पीछे हटाने का है जो स्नानों द्वारा और उचित भोजन द्वारा भीतरी उष्णता को कम करने से किया जा सकता है। रोगी नवयुवक है और पीठ का विकृत पदार्थीय भार है नहीं, अतः हम विश्वास के साथ नैरोग्य लाभ की प्रतिज्ञा कर सकते हैं। किन्तु गुमड़ियाँ पैदा हो चुकी हैं और पार्श्वीय भार भी प्रतीत होता है, इसलिये सन्तोष की आवश्यकता होगी। यदि केवल सम्मुख भार ही होता तो इस से आधे समय और आधे कष्ट की भी आवश्यकता आरोग्यता प्राप्त करने में न पड़ती।

(३) चित्र सं० ७ का सभ्य पुरुष भी उचित ढँग [१] का

नोट १—जो अँग्रेजी शब्द आया है उससे अभिप्राय उस ढँग से है जिसमें कोई शख़्स अपने शरीर को रक्खा करता हो जैसे कोई मनुष्य झुक कर च-

शख्स है। उसका रङ्ग चेहरे के उर्ध्व भाग के विचार से उचित दर्जे की निरोगता का रङ्ग है; किन्तु चेहरे के नीचे भाग की सूरत खाकी रङ्ग की है और भारी भी है। पहलुओं पर एक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि हमको फिर सम्मुख भार वाला रोगी मिला है, क्योंकि चेहरा और ग्रीवा की सीमा विभाजिनी रेखा लोप होगई है। यदि शिर को ऊपर उठाया जाता है तो ग्रीवा पर प्रत्यक्ष रूप से सूजन दिखाई पड़ती है जो ठोड़ी तक पहुंच गई है। और गर्दन को दाईं और बाईं ओर घुमाने से इधर उधर कुछ तनाव नहीं दिखाई देता जिससे सिद्ध होता है कि दोनों पार्श्वों में विकृत पदार्थीय भार नहीं है; और पीठ का विकृत पदार्थीय भार भी मौजूद नहीं पाया जाता।

अतः रोगी विशेष कर गर्दन के कारण कष्ट में है, और शीतोष्ण दशा के कम होने पर दान्तों की पीड़ा से घोर कष्ट पाता है। आयु के विचार से सन्देह है कि उसके कई दाँत गिर पड़े हों। विजातीय पदार्थ विशेषकर चेहरे के अधो भाग में एकत्र हुआ है, और कुछ उर्ध्व भाग में भी पहुंचा है, जिस से

लते हैं, कोई गर्दन अधिक उठाकर या अधिक नीची करके चलते हैं, कोई पाँव तिरछे करके चलते हैं और कोई एक ओर को ग्रीवा या शरीर को झुका कर चलते हैं।

कि बाल गिर गये हैं। और कुछ २ यह भी भय है कि शीघ्र या देरी में आँखों पर भी प्रभाव पड़ जावे।

किन्तु इसलिये कि केवल सम्मुख भार ही मौजूद है; अतः हिप व फ्रिकशन सिट्ज़ बाथ के द्वारा रोगी को शीघ्र ही निरोग होने की आशा दिलाई जा सकती है। और वह साधारण दशाओं में अधिक आयु तक जीवित रहने की भी आशा कर सकता है।

(४) वह युवती स्त्री जो चित्र सं० १६ में दिखाई गई है अपना शिर बाईं ओर को झुका हुआ रखती है। इससे हम तत्काल यह परिणाम निकालते हैं कि उसको दाहिनी ओर का विकृत पदार्थीय भार है; और ध्यान पूर्वक परीक्षण करने से यह बात और भी स्पष्ट ज्ञात होती है। चेहरे का दाहिना पार्श्व, वाम पार्श्व की अपेक्षा अधिक लम्बा और अधिक चौड़ा है। दाहिनी ओर की त्वचा चमकीली ज्ञात होती है; और दूसरी ओर की त्वचा ठीक रङ्गत की है।

शिर घुमाने पर निश्चय होता है कि विकृत पदार्थीय भार केवल दाहिनी ओर है और थोड़ा सा सम्मुख ओर।

अतः हम धैर्य्य के साथ यह परिणाम निकाल सकते हैं कि पेड़ू की दाहिनी ओर उसके कोमल भाग में विकृत पदार्थ के कई बड़े २ संग्रह उपस्थित हैं जोकि दाहिनी ओर दबाव

डाल रहे हैं। इसी प्रकार दाहिनी ओर के सम्पूर्ण अंग उससे प्रभावित होजायेंगे; निदान इस दशा में दन्त पीड़ा, कर्ण पीड़ा, नेत्रों की सूजन या आधा सीसी के होने की आशा हमको करनी चाहिये। सब तीव्र रोगों की दशा में सबसे पहिले दाहिनी ओर अवश्य प्रभावित होवेगी; जैसे गले की सूजन में दीख पड़ता है। किन्तु पसीना भी मध्यम दर्जे का होने के कारण रोगिणी को सख़्त जुक़ाम का कष्ट बहुत ही कम होगा।

(५) क्रिया कुशल अभ्यासी तत्काल देखलेगा कि जो शख़्स चित्र सं० १७ में दिखलाया गया है उसकी चाल ढाल ठीक नहीं है, बामस्कन्ध दाहिने से ऊँचा है। हम यह भी देखते हैं कि शिर शरीर की केन्द्र रेखा में होने से दाहिन ओर अधिकतर हटा हुआ है। और आधे शरीर के बाम ओर का कुल भाग शरीर के दाहिने भाग से अधिक चौड़ा और अधिक पुष्ट है, जैसा कि शरीर पर पोशाक होते हुए भी दिखाई पड़ता है। त्वचा का रङ्ग पीला है। और रोगी की उदास व निराश आकृति प्रकट करती है कि वह विकृत पदार्थ के भार से अधिकतम लदा हुआ है।

ध्यान पूर्वक निरीक्षण से बाईं ओर का अत्यन्त कड़ा विकृत पदार्थ हमको प्रकट होता है। सम्मुख भार कम है, य-

यपि पीठ बहुत ही प्रभावित हो चुकी है। दाहिनी ओर विकृत पदार्थीय भार से पवित्र है।

ऐसे स्पष्ट पार्श्वीय भार से प्रकट होता है कि पेड़ू का विकृत पदार्थीय भार अधिकतर बढ़ा हुआ है। और अवश्य ही उसमें (पेड़ू में) बड़ी २ सूजन विशेष कर बाईं ओर मौजूद होंगी जिसमें कि सब प्रकार की खराबियों के पैदा होने की आशा होनी चाहिये। चित्र से इस विषय की भली भाँति पुष्टि होती है।

निस्सन्देह रोगी को "हृदय का रोग" है उसका झुकाव गठिया की तरफ है; और चूंकि विकृत पदार्थीय भार अत्यन्त अधिक है, पक्षाघात (फ़ालिज) रोग के आक्रमण का भय है जोकि दाहिनी ओर होगा।

ऐसी बढ़ी हुई विकृत पदार्थीय भार की दशा में पूर्ण नैरोग्य कठिनाई से ही सम्भव है। वस्तुतः इस दशा में किसी प्रकार भलाई हो जाने की आशा की जासकती है।

(६) चित्र सं० २० एक मनुष्य की मूर्ति है जिसके शरीर का पोषण भली भाँति हुआ है और पुष्ट प्रतीत होता है। परन्तु हम देखते हैं कि वह शरीर को सीधा नही रखता है, क्योंकि वह अपना शिर किसी क़दर आगे को झुका कर चलता

है। यह तो सहज में ही ज्ञात होता है कि वह बहुत मोटा है और उसके शरीर का पोषण आवश्यकता से अधिक किया गया है, उसका चेहरा सुर्ख है और जोश के चिन्ह प्रगट करता है। मस्तक पर स्पष्ट रूप से चर्बीली गद्दी उपस्थित है।

हम इस समय ही देख सकते हैं कि यह शख़्स पीठके विकृत पदार्थीय भार का रोगी है। ध्यान पूर्वक परीक्षण से प्रकट होता है कि ग्रीवा की गुड़िया विकृत पदार्थ से खूब भरी हैं, अतः शिर को इधर उधर घुमाना असम्भव है। जब हम उससे गर्दन घुमाने को कहते हैं तो वह ऐसा करने में कुल शरीर को घुमा देता है। पार्श्वीय भार का दोनों ओर चिन्ह मिलता है। और यह बात गर्दन के दोनों ओर की सख्त सूजन से स्पष्ट प्रकट होती है। इसमें सम्मुख भार कुछ भी नहीं है।

यह हमारा रोगी असीम घबराहट वाला है, और कदाचित् मस्तिष्क सम्बधी परिश्रम या अधिक देर तक शारीरिक परिश्रम करने के योग्य अब नहीं है, उदाहरणार्थ वह अपने विचारों को इतने एकत्रित नहीं कर सकता है कि किसी व्याख्यान को भली भांति समझ सके; और वह थियेटर या नृत्य में अन्त तक चुप चाप नहीं बैठ सकता है, और न वह एक कमरे में अधिक देर तक ठहर सकता है। इस रोगी के मस्तिष्क में ख-

राबी आजाने का बड़ा खटका है।

वह बवासीर के मस्सों के कष्ट में भी ग्रसित है जिन में से कि विकृत पदार्थ पीठ को जाता है।

यह रोगी मेरे चलाये प्रकार पर वर्षों चिकित्सा करने के पश्चात् ही पूर्ण आरोग्य प्राप्त करने की आशा कर सकता है। किन्तु चूंकि विकृत पदार्थ के संग्रह अभी तक कड़े नहीं हुए हैं, उसकी दशा में उन्नति प्राप्ति की आशा थोड़े सप्ताहों में की जा सकती है ज्यों ही कि शिर से कुछ विकृत पदार्थ दूर हो जावे। पूर्ण नैरोग्य प्राप्ति के लिये पीठ और दोनों पार्श्वों का विकृत पदार्थीय भार अवश्य दूर किया जाना चाहिये।

(७) चित्र सं० २ में जो सभ्य पुरुष कि दिखाया गया है वह अत्यधिक मोटा है, और हमारी ओर वह धीरे धीरे और छोटे क़दम रख कर आता है। उस की चाल ढाल बुरी नहीं है, परन्तु शरीर के रङ्ग से ज्ञात होता है कि रोग की जड़ गहरी पहुंच गई है, क्योंकि त्वचा बहुत लाल है और उसकी चमक (दूसरी बातों की अपेक्षा) अधिक स्पष्ट है उसका मोटापन ही हमको तत्काल बतलाता है कि वह विकृत पदार्थ से बहुत भरा हुआ है। मस्तक पर चर्बीली गद्दी मौजूद है, जो आँखों पर ऐसा दबाव डालती है कि वह छोटी २ मालूम होती हैं और

कठिनाई से ही खोली जा सकती हैं। हम को तत्काल ही पीठ का भार दिखाई पड़ता है, और उसका दबाव मस्तक से नीचे की ओर को है अर्थात् पीठ की ओर से। पिल पिले और लटके हुए कपोल प्रकट करते हैं कि विकृत पदार्थ शिर में प्रविष्ट होगया है। रोगी की खाली दृष्टि से हमको भय होता है कि दिमाग़ी अबतरी का प्रारम्भ हो चला है।

अब हम अधिक ध्यान से परीक्षा करते हैं। ग्रीवा लग भग शिर के बराबर मोटी है कि जिससे वह प्रथक् नहीं देखी जा सकती। वह चारों ओर सूजी हुई और नितान्त कड़ी है। इस लिये शिर एक ओर से दूसरी ओर को नहीं फेरा जा सकता, और ऊपर को बहुत थोड़ा उठ सकता है। जबड़ा के समीप की और गुद्दी के समीप की सीमा विभाजिनी रेखाएँ बिल्कुल नहीं रही हैं।

हम देखते हैं कि यह हालत विकृत पदार्थीय भार से सब शरीर भर जाने की एक बढ़ी हुई दशा की घटना है, किन्तु वर्तमान समय में प्राकृतिक रूप से ऐसी अनभिज्ञता होगई है कि (इन सब बातों के होते हुए भी) बहुत से मनुष्य इस रोगी को एक पुष्ट और निरोग मनुष्य समझेंगे।

स्पष्ट प्रगट है कि रोगी चिरकाल तक मन की अस्थिरता

और रग पट्ठों की बेचैनी से कष्ट भोगता रहा है। किशोरावस्था से ही बदहज़मी विशेषकर बद्धकोष्ठ (कब्ज़) में ग्रसित रहा है। निस्सन्देह बवासीर के मस्से भी उसे कष्ट देते हैं। निश्चय है कि वह गहरी और सुख की निद्रा का आनन्द कभी नहीं उठाता है; और निद्रा न आने की शिकायत कदाचित् उसे वर्षों से रही है। यद्यपि उसकी मस्तिष्क की ताक़त जाती रही है, उसको कहीं भी आराम नहीं मिलता है, क्योंकि विकृत पदार्थ का दबाव ऊपर की ओर अधिक है जिसके साथ में ऊँचे दर्जे का भीतरी ज्वर मौजूद है। चूंकि वाम ओर भी विकृत पदार्थ का भार है, पर्याप्त पसीना नहीं निकलता और उसके कारण विकृत पदार्थ का दबाव ऊपर को बढ़ता जाता है यह मनुष्य यद्यपि इस समय युवा है, किन्तु कोई काम भी उचित रीति से नहीं कर सकता। चिरकाल से नपुंसक हो गया है।

ऐसे व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार का रोग होना सम्भव है। यदि तत्काल चिकित्सा न प्रारम्भ करदी जावे तो निश्चय ही मस्तिष्क बिल्कुल ख़राब होजायगा। इस दशा में पूर्ण नैरोग्य कठिनाई से सम्भव है, विशेषकर इस कारण से कि रोगी में काम करने का उत्साह नहीं रहा है। यदि सिहत में वृद्धि हो जावे तो भी महती सफलता समझनी चाहिये।

चित्र सं० ४१ * सम्मुख तथा पार्श्वीय भार
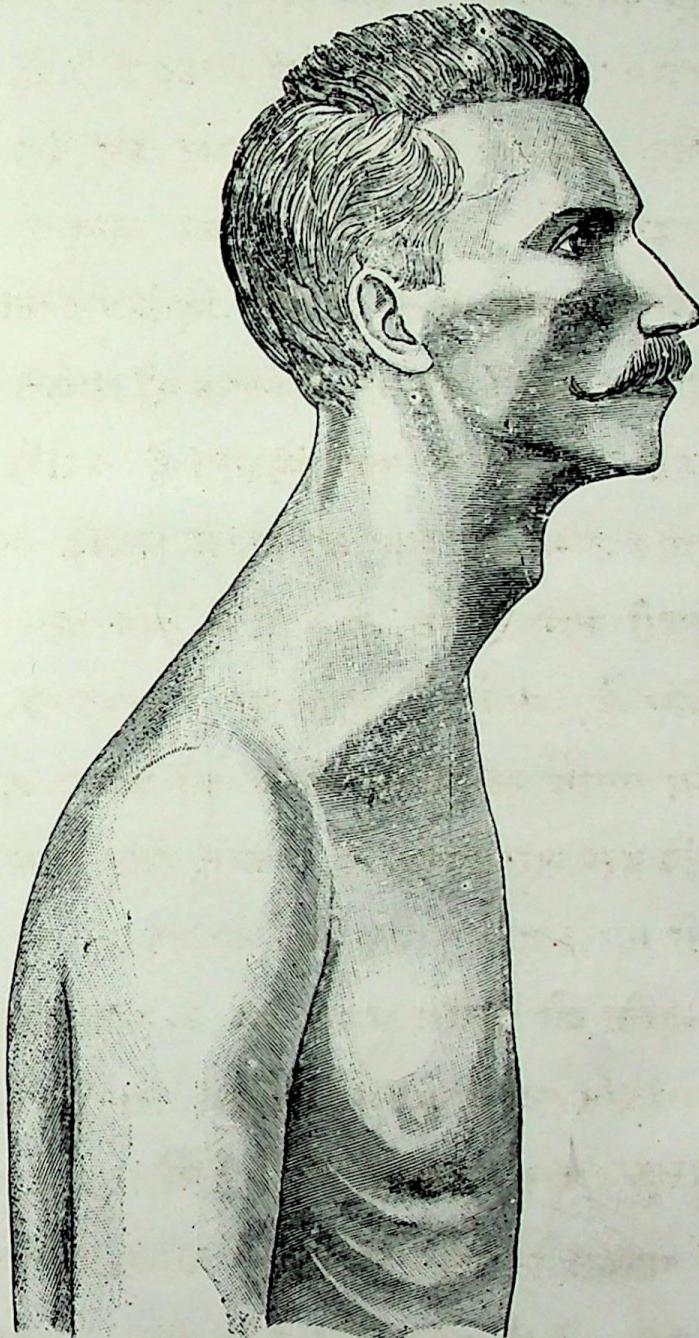
(क्षयी रोग वाला)

डील–दुर्बल, शिर आगे को झुका हुआ। **शिर**–डील डौल साधारण कोटि का। **मस्तक**–मध्यम दर्जा। **आंखें**–सुस्त। **नासिका**–(असली रूप की) भीतर से लाल व सूजी हुई। **मुख**–खुला हुआ। **चेहरा**–अत्यन्त दुर्बल, रँग खाकी, चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर। **ग्रीवा**–अत्यन्त लम्बी और सख़्त जिस पर कि विकृत पदार्थ का जमाव वर्तमान है; गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा ठीक स्थान पर। **छाती**–खाली अर्थात् भीतर को दबी हुई।
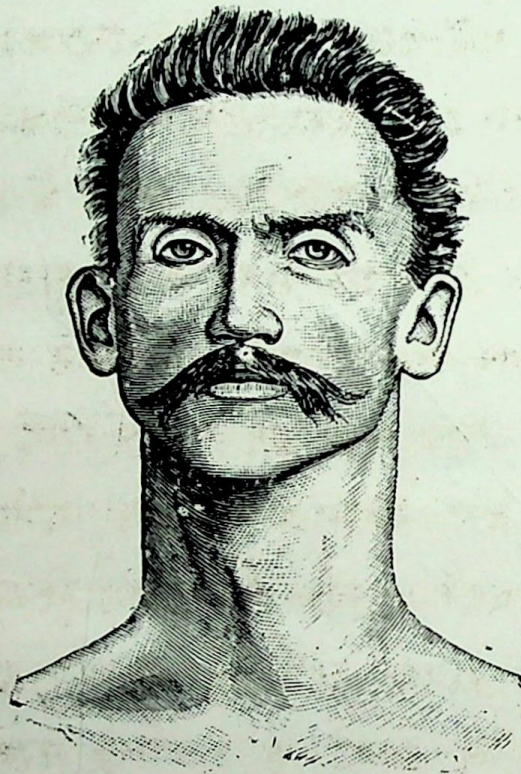
चित्र सं० ४२ * सम्मुख तथा पार्श्वीय भार ।

चित्र सं० ४१ वाले मनुष्य का सामने की ओर से लिया हुआ यह चित्र है, इस के देखने से ज्ञात होगा कि चेहरा वर्गाकार है और ग्रीवा असाधारण कोटि लम्बी है।

(८) चित्र सं० ४१ लगभग ३० वर्ष की आयु वाले एक मनुष्य का चित्र है। शिर आगे को झुका हुआ है और छाती खाली है। रंग पीला सुस्त और मुर्झाया हुआ है। चेहरा बहुत दुर्बल और कपोलों की हड्डियाँ उभरी हुई हैं।

यह चिन्ह हमें बतलाते हैं कि रोगी की भोजन की दशा नितान्त ही खराब है; उसका शरीर भोजन को शरीरावयव नहीं कर सकता, और शरीर क्षय होता जाता है।

ध्यान पूर्वक निरीक्षण से गर्दन का असाधारण दर्जे लम्बा होना, और उसपर विकृत पदार्थ के संग्रह का उपस्थित होना प्रगट होता है। (चित्र सं० ४२ से इस रोगी का सम्मुख भाग ज्ञात होता है) इस स्थान पर विकृत पदार्थीय भार सम्मुख ओर है, यद्यपि चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा विकृत पदार्थ के खुश्क होजाने और पट्ठों के क्षय होजाने के कारण फिर ठीक स्थान पर होगई है। परन्तु ऊपर को शिर उठाने पर हम तनाव स्पष्ट रूप से देखते हैं, और गुमड़ियाँ ऐसी स्पष्ट दिखाई देती हैं कि इस विषय में किंचित् भी सन्देह शेष नहीं रहता कि इस व्यक्ति में विकृत पदार्थीय भार सम्मुख ओर है। गर्दन दाहिने व बाईं ओर भी विकृत पदार्थ से बाहुल्य रूप से भरी हुई है, क्योंकि अधिक सूजी हुई है। और इस

स्थल पर तनाव प्रगट करती है। यह बात देखने के योग्य है कि विकृत पदार्थीय भार बहुत अधिक ऊपर को नहीं पहुंचा है, क्योंकि मस्तक विकृत पदार्थ से बचा हुआ है और बाल निरोग और घने हैं।

(इस स्थल पर) पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार नहीं है, विकृत पदार्थ ने विशेष कर गर्दन में निवास कर लिया है, और दोनों पार्श्वों में (दाहिने ओर बाम में) और सम्मुख में भली भाँति पहुंच गया है। विकृत पदार्थ नीचे को भी आया है और फेफड़ों में प्रविष्ट हुआ है, जिसके कारण छाती खाली होगई है और कन्धे नीचे को दब गये हैं।

क्योंकि पीठ की ओर विकृत पदार्थीय भार नहीं है, रोगी की दिमाग़ी (मस्तिष्क की) हालत ठीक है, और अधिक दिनों के रोग होने के कारण उसको कुछ पीड़ा नहीं मालूम पड़ती, और चेहरा सन्तुष्ट है। यह शख़्स उन रोगियों में से है जो कि अन्तिम श्वाँस तक निरोग हो जाने की आशा रक्खा करते हैं। हम उसकी यह आशा उससे नहीं छीनेंगे, किन्तु हम यह जानते हैं कि आरोग्यता लाभ करने का अवसर बहुत कम है। किन्तु उसकी दशा में बिहतरी की आशा अवश्य की जा सकती है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि रोगी की दशा का पहिले से

निदान नहीं किया गया, एक दो वर्ष पूर्व उसका निरोग होना बिल्कुल सम्भव था।

(६) जब कि चित्र संख्या ५० व ५१ वाला लड़का हमारी तरफ़ को आता है, तो हम तत्काल देखते हैं कि उसका शिर साधारणतया बड़ा और आगे को झुका हुआ और चेहरा सुर्ख़ है। ग्रीवा स्पष्ट प्रतीत होती है कि बहुत छोटी है। पूर्ण परीक्षण से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार मौजूद है, जोकि सब ओर से आँखों की ओर को चलकर आया है। पेड़ू भी जैसा कि चित्रों से प्रगट है बहुत ही बड़ा है। बहुत से लोग उसको विशेष कर एक उत्तम प्रकार वाले शरीर का बच्चा ख़यालकरेंगे, किन्तु हम जानते हैं कि उसके शरीर में रोग जगह जगह भरा हुआ है। यह बात सहज में देख सकते हैं कि आँखों पर अधिक प्रभाव पहुंचा है। सच बात यह है कि बच्चा जब मेरे पास आया था तब लग भग अँधा था। चित्र में उसकी आकृति एक मास की चिकित्सा पश्चात् दिखाई गई है; उसका पेड़ू प्रारम्भ में इस समय से अधिक उठा हुआ था। और विकृत पदार्थ का दबाव आँखों की ओर ऐसा अधिक बढ़ा हुआ था कि फ़ोटोग्राफ़ का चित्र नहीं लिया जा सकता था।

———

विकृत पदार्थीय भार का दूर करना

विकृत पदार्थीय भार का दूर करना अर्थात् विजातीय द्रव्य का शरीर से पृथक् करना, केवल यही एक रोग की चिकित्सा करने की विधि है। विकृत पदार्थ का शरीर के एक भाग से दूसरे में परिवर्तन करना, उसको सीमा बद्ध कर देना और उसको सूख जाने देना, यह सब बातें निरोग करना नहीं हैं किन्तु रोग के चिन्हों को दबा देना ही हैं।

यही अन्तिम वर्णित चिकित्सा रीति है जिसको प्राचीन हकीमों और डाक्टरों ने ग्रहण किया है, जैसा कि मैं बार २ वर्णन कर भी चुका हूं। दूसरी चिकित्सा विधियें न्यूनाधिक (कभी २ विना जाने) सचमुच रोग का कारण दूर करने में प्रयोग की जाती हैं; किन्तु जो सफलतायें प्राप्त होती हैं वह बहुत भिन्न भिन्न होती हैं।

सब से अधिक प्रभाव शाली चिकित्सा विधि का वर्णन मैंने अपनी "विना औषधि और बिना चीर फाड़ की "आरोग्यता

प्राप्त करने की नवीन विद्या" नामक पुस्तक में विस्तार पूर्वक किया है, और इसी पुस्तक की ओर मैं अपने पाठकों का ध्यान सब बातों की ज्ञान प्राप्ति करने के लिये आकर्षित करता हूं।

किन्तु जो कुछ इस जगह मैं और लिखूंगा वह प्रथम इस बात को सिद्ध करना होगा कि विकृत पदार्थीय भार का शरीर से दूर होना और आरोग्यता प्राप्त होना सर्वदा एक ही बात है। यह सत्य है कि इस बात का ज्ञान कि आरोग्यता प्राप्त होने लगी प्रायः उस समय के पूर्व होने लगता है जब कि विकृत पदार्थ का कुल भार दूर होजाय, तौ भी जैसा कि हमको निरीक्षणों से स्पष्ट रूप से प्रकट है यह निरोग होने का ज्ञान विकृत पदार्थ की न्यूनता होने पर पूर्णतया निर्भर है। "साइन्स आफ फेशियल एक्स प्रेशन" के द्वारा हम इस बात का सन्तोष कर सकते हैं कि आया निरोगता पूर्ण रीति से होगई है या केवल एक उचित दर्जे की उन्नति ही स्वस्थता में प्राप्त हुई है।

चित्र सं० ४३ व ४४ एक ऐसी स्त्री के चित्र हैं जोकि सामने के भार और पार्श्वीय भार में ग्रसित थी। उसने दश वर्ष तक गर्दन की रसोलियों के दूर करने के लिये हर प्रकार की चिकित्सा का परीक्षण किया था। अन्तिम उसने मेरी चिकित्सा प्रणाली की परीक्षा करने का निर्णय किया। और ढाई वर्ष की

चिकित्सा के पश्चात् अपना अभीष्ट पूर्ण कर लेने का सन्तोष उसे होगया।

चित्र सं० ४५ उसके इस चिकित्सा के पीछे की आकृति है। और केवल रसोलियाँ ही दूर नहीं हुई हैं, रोग के अन्य चिन्ह भी दूर होगये हैं, चेहरे की चिन्तायुक्त आकृति अब शेष नहीं रही। पूर्वापेक्षा उसके कपोल अधिक भर गये, मुख जिसको खुला रखने का रोगिणी का स्वभाव होगया था अब बन्द रहने लगा; और गर्दन ठीक दर्जा गोल और चिकनी हो गई है। रंगत जो पहिले पीली थी अब तरोताज़ा है। चिकित्सा के पूर्व उसका पाचन सदैव खराब रहता था अब उस में कुछ त्रुटि नहीं है। जीवन, भार रूप होने की अपेक्षा अब आनन्द मय प्रतीत होने लगा है और अन्य अङ्ग आकृतियें अत्यन्त रूपवान् होगई हैं।

इस प्रकार से केवल वही चिन्ह, जिनके दूर करने के लिये कि चिकित्सा प्रारम्भ की गई थी, दूर नहीं हुए, अपितु अन्य सब दूषित चिन्ह भी नष्ट होगये। और सच मुच इसके विरुद्ध हो भी कैसे सकता था, जब कि विकृत पदार्थ एक बार शरीर से प्रथक् कर दिया गया हो।

चित्र सं ४६, ४७ से भी एक आश्चर्य जनक परिवर्तन, जो कि एक रोगी ने मेरी चिकित्सा प्रणाली पर चलने से प्राप्त

चित्र सं० ४३ * (चित्र सं० ४४ देखिये)

चित्र सं० ४४ * समभुज व पार्श्वीय भार।

(यह चित्र उसी स्त्री का है जिसकी चित्र सं० ४३ है)

शिर–मध्यम डील डौल का। मस्तक–मध्यम कोटि का निरोग। आँखें–मध्यम कोटिकी निरोग नासिका– मध्यम कोटि। मुख–खुला हुआ। चेहरा–अत्यन्त निर्बल; चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा जाती रही है। ग्रीवा–बड़ी २ गुमड़ियों से भर पूर; गुद्दी की सीमा विभाजिनी रेखा साधारण स्थान पर।

चित्र सं० ४५ * निरोग आकृति ।

ढाई वर्ष की चिकित्सा के पश्चात् का उसी स्त्री का चित्र है जिसके चित्र सं० ४३ व ४४ में दिये गये हैं।

चित्र सं० ४६ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार।

शिर–बहुत बड़ा। मस्तक–चर्बीली गद्दी मौजूद है। आँखें–घुसी हुईं। नासिका–बहुत मोटी। मुख–बुजा हुआ। चेहरा–चेहरे व गर्दन की सीमा विभाजिनी रेखा जाती रही है। ग्रीवा–अत्यन्त मोटी। कंधे–ढले हुए।

चित्र सं० ४७ *

यह उस मनुष्य का चित्र है जो सं० ४६ के चित्र में दिखलाया गया है, अब ३½ साढ़े तीन वर्ष की चिकित्सा के पश्चात् उसकी आकृति ऐसी होगई है।
(सत्यता और स्पष्टता के लिये उसकी चिट्ठी में लिखा वर्णन जो इस पुस्तक के पृष्ठ १५० में दिया है पढ़िये)।

किया था, प्रकट होता है। इस सभ्य पुरुष का पत्र मैं नीचे मुद्रित करता हूं। किन्तु प्रारम्भ में यह वर्णन करना आवश्यक समझता हूं कि चित्र सं० ४६ से ज्ञात होता है कि यह रोगी सम्पूर्ण शरीर के विकृत पदार्थीय भार में ग्रसित है। ऐसी दशा में वह कठिन स्नायु विकारों में ग्रसित होरहा था और इस बात का भय उसके लिये प्राप्त था कि किसी न किसी दिन तीव्र रोग में वह फँस न जाय।

चित्र सं० ४७ से ज्ञात होता है कि उसका विकृत पदार्थीय भार बहुत कम होगया है। इस समय वह किसी प्रकार अधिक दुर्बल है, किन्तु कुछ समय बीतने पर, उसकी अधिक आयु होने पर भी, उसका शरीर निस्सन्देह आवश्यक गोलाई प्राप्त कर लेगा। और रोगी और कुरूप व पिल पिले विकृत पदार्थ के स्थान में, निरोग माँस आजावेगा।

मैं यह भी कथन करना उचित समझता हूं कि निम्न लिखित चिट्ठी में कही हुई चिकित्सा मेरी बतलाई हुई नहीं थी। अपितु रोगी ने मेरी पुस्तक [१] को पढ़कर स्वयं अपनी समझ से ही चिकित्सा करनी प्रारम्भ कर दी थी। इतनी अधिक आयु वाले रोगी की चिकित्सा मैं अवश्य कठिन समझता; किन्तु हर प्रकार

---

१) अर्थात् मेरी वह पुस्तक जिसका नाम 'आरोग्यता प्राप्त करनेकी नवीन विद्या' है।

उसका शरीर सब प्रकार के क्राईसिस अर्थात् नाज़ुक हालतों से सफलता पूर्वक निकल आया है।

यह सभ्य पुरुष इस प्रकार लिखता है:—

प्रिय मिस्टर कुहनी !

सप्ताहों, महीनों, और सिपाहियों से मेरी उँगलियां आपको पत्र लिखने के लिये खुजला रही हैं; किन्तु लगातार चिकित्सा करने और स्नानों में लगे रहने और ऋतु की उत्तमता के कारण मैं अब तक ऐसा न कर सका। किन्तु मेरे फ़ोटो के चित्र ने एक दूसरा और असली कारण पैदा कर दिया कि अब मैं आपको लिखूं। अत: मैं अब अधिक विलम्ब नहीं करूँगा।

किन्तु विस्तृत हाल लिखने के पूर्व दो बातों का वर्णन करता हूं, नहीं तो कदाचित् आपको मेरा स्मरण न हो सकेगा।

(१) आपकी सेवा में मैं फ़र्वरी सन् १८६० ई० के मध्य में उपस्थित हुआ था।

(२) उस समय मेरी पूरी दाढ़ी थी, इसलिये अब की अपेक्षा तब मैं अवश्य एक और ही व्यक्ति मालूम होता था।

मैं अत्यन्त हर्ष से आपकी सेवा में दो फ़ोटो के चित्र भेजता हूं, जिनमें से किसी को भी इस बात का ध्यान रख कर कि आकृत की मूल चेष्टाओं के रूप में कुछ अन्तर न पड़ जावे, चित्र को निगेटिव [१] या पाज़ेटिव [२] की दशा में दुरुस्त करने के लिये हाथ भी नहीं लगाया गया है। पहिला फ़ोटोग्राफ, सितम्बर सन् १८८६ ई० के अन्त में तत्काल उसके पश्चात् ही लिया गया था, जबकि

(१–२) फ़ोटो से तस्वीर लेने में शीशे पर प्रथम उलटी तस्वीर आती है उसको निगेटिव कहते हैं। और फिर उससे जो सीधी तस्वीर छापते हैं उसे पाजेटिव कहते हैं।

मैं डाक्टर K (क) के एलोपैथिक अस्पताल से जो U (यू) स्थान में है, चार मास तक अकथनीय चिकित्सा के पश्चात् निरोग बतलाया जाकर, बाहर कर दिया गया था। किन्तु इस फ़ोटो ग्राफ़ को देख कर मुझे पागल के सिवाय निरोग कौन मान सकता है? यह लोगों को हँसाने के लिये तो पर्याप्त है, किन्तु वस्तुतः इसे देख कर रोना आता है। और दूसरा फ़ोटोग्राफ़ 'कुहनी' की विधि पर ठीक साढ़े तीन वर्ष तक चिकित्सा करने और उसके अनुसार भोजन सेवन करने के पश्चात् लिया गया था। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने कि 'कुहनी' की प्रणाली अनुसार चिकित्सा व भोजन की पूरी २ पैरवी की है तो वह व्यक्ति मैं हूं, और जो परिणाम कि मुझको प्राप्त हुआ है उससे मैं अपनी पूरी पूरी सन्तुष्टता प्रकट करता हूं। दोनों फ़ोटो के चित्रों से जो बड़े २ परिवर्तन और भेद प्रकट होते हैं वह कठिनाई से विश्वास में आवेंगे। यह दोनों फ़ोटो आपके अधिकार में हैं। यदि इनको आप किसी समाचार पत्र में प्रकाशित करना चाहें, या अपनी पुस्तक के किसी आगामी संस्करण में मुद्रित करना चाहें तो इस के लिये भी मैं अपनी पूर्ण स्वीकृति देता हूं, और मैं अत्यन्त प्रसन्नता से अपनी ठीक और पूर्ण रिपोर्ट कुहनी की उस चिकित्सा प्रणाली और भोजन के विषय में जो मैंने ग्रहण की है आपकी सेवा में भेजूंगा, (भोजन बिल्कुल उसी प्रकार का था जैसा कि आपकी पुस्तक आ० प्रा० क० न० विद्या में वर्णित है), क्योंकि मैंने आदि से अन्ततक बिना घटाए बढ़ाये अपनी दिन चर्या लिखी है। मैं अब भी तीन फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ ३० से ४० मिनट के नित्य प्रति लेता हूं; अर्थात् प्रथम स्नान ६ बजे प्रातः काल, प्रातः काल के ८ बजे से १० बजे तक यथा सम्भव नँगे पाँव वायु सेवन (भ्रमण) करता हूं, और इसी बीच में अेबर के नियमानुसार केवल कुर्ता और पायजामा पहिन कर धूपदार जँगल में व्यायाम करता हूं; और ६ बजे या १० बजे से ११

बजे तक खुली हुई खिड़की के पास बैठकर पाठ पढ़ाता हूं, या सवारी में चढ़ कर मैदान में हवा खाता हूं। ११ बजे से १२ बजे तक फ़्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेता हूं। और १२ बजे से १ बजे तक खाना (डिनर) खाता हूं; और १ बजे से २ बजे तक बाग़ में विश्राम करता हूं; और २ बजे से ४ या ५ बजे तक पढ़ाता हूं, या सवार होकर बाहर जाता हूं। ५ बजे से ६ या ७ बजे तक दूसरी बार पैदल भ्रमण (वायु सेवन) करता हूं। ७ बजे फ़्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेता हूं। ९ बजे सोता हूं। और मंगल बुध को ७½ बजे से ९½ बजे तक ड्राइंग सिखाता हूं। इन दोनों दिन ड्राइंग सिखाने के पूर्व और पश्चात् आधे आधे घण्टे का सिट्ज़ बाथ लिया करता हूं। जनवरी सन् १८९० ई० से १ अगस्त सन् १८९२ ई० तक भोजन ३ बार नित्य किया गया है।

प्रातः सायं—बिना चोकर निकले हुये आटे की रोटी, या बिना चोकर निकला हुआ आटा और फल, अधिक तर सेब व अँगूर;

डिनर—[दोपहर से पूर्व या दोपहर का खाना) शाक, अन्न से बने हुए भोज्य पदार्थ और फल प्रातः काल की तरह ! फल मैंने सदैव कच्चे अर्थात् बिना उबाले हुए खाये हैं। १ अगस्त सन् १८९२ ई० से इसी के अनुसार ३ बार नित्य भोजन खाया—और सब भोजन बिना पके हुए खाये। अर्थात् प्रातः सायं उसी प्रकार जैसे कि पूर्वमें; दोपहर—हर प्रकार के बिना पकायेहुए शाक सिवाय आलू के जो अधपके रक्खे जाते थे, और टुकड़े टुकड़े करके नींबू के रस से स्वादिष्ट बनाए जाते थे; और बिना चोकर निकले हुए आटे की रोटी के स्थान में बिना चोकर निकाला हुआ आटा।

१ जनवरी सन् १८९३ ई० से १ अगस्त सन् १८९३ ई० तक भोजन दोबार प्रति दिन खाया है—अर्थात् प्रातः कुछ नहीं (क्योंकि मैं काम कम करता

था); दोपहर बिना पकी हुई तरकारियां नींबू के रस के साथ, साबित या दला हुआ कच्चा अन्न, या इस कारण कि मेरे दांत कभी २ इस काम को भलीभांति नहीं कर सकते थे, बिना चोकर निकले हुए आटे की रोटी या चपाती और कच्चे फल, सायङ्काल–बिना चोकर निकला हुआ आटा या दलिया और कच्चे फल। और १ अगस्त सन् १८९३ ई० से आज की तारीख़ तक मैं दो बार नित्य भोजन करता हूं अर्थात् प्रातः—बिना चोकर निकला हुआ आटा या दलिया या फल बिना चोकर निकले हुए आटे की रोटी; और दोपहर—यथा पूर्व (अर्थात् प्रातः काल की तरह) अर्थात् बिना पकी तरकारियां और फल, या बिना छने आटे की रोटी और फल; सायङ्काल—कुछ नहीं।

इस चिकित्सा का परिणाम उस फ़ोटो के चित्र से जोकि मैं इसी लिफ़ाफ़े में भेजता हूं, ज्ञात हो सकता है। इस से अधिक मैं और कुछ नहीं लिखता, क्योंकि मेरा चित्र अपनी दशा स्वयं बतलाता है, सिवाय इसके कि पूर्व दशा में मेरी खोपड़ी गंजी थी। परन्तु अब बाल फिर जम निकले हैं जोकि पहिले के गंज के स्थान को भली भाँति घेरे हुए हैं। मेरा शरीर इतना बदल गया है कि ३½ वर्ष के समय में ५ पोशाकें टोपी से लेकर जूती तक बदलना पड़ीं और एक बात जो विश्वास के योग्य नहीं मालूम देती, वह यह है कि ५५ वर्ष की आयु में सब से पिछली नई डाढ़ पैदा होगई। यद्यपि वह बहुत समय तक स्थिर नहीं रही, किन्तु वह बिना किसी कष्ट के, लग भग १ वर्ष पश्चात्, निकल आई, कुछ भी हो, वह जमी तो जोकि कुहनी साहिब की निकाली चिकित्सा व भोज्य के बिना होना कदापि सम्भव न था।

छुट्टी के दिनों में इस स्थान N (न)[१] में धूप[२], वायु और प्रकाशका बाथ

नोट—१ किसी स्थान के नाम का आदि अक्षर है।

नोट—२ सन बाथ से अभिप्राय है।

(स्नान) प्रति दिन जब कि आकाश निर्मल होता है, लेता हूं। और यह मुझे बहुत लाभ देता है, दुर्भाग्य से मैं उसे घर पर नहीं ले सकता, क्योंकि मेरी जीविका के कर्त्तव्य बाधक होते हैं। अब मैं फिर यह लिख कर समाप्त करता हूं कि लिफ़ाफ़े में भेजे हुए फ़ोटो के चित्रों को मैं बिल्कुल आपके अधिकार में छोड़ता हूं अर्थात् जिस प्रकार चाहें काम में लावें, और यदि इस चिकित्सा प्रणाली के विषय में जिसको मैंने बर्ता है, आप कुछ अधिक पूछें तो उसके सम्बन्ध में आपको सूचना देने में मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। आपकी इस चिकित्सा के लिये धन्यवाद देता हुआ और आपको और आपके कुटुम्ब को प्रतिष्ठा और प्रेम के साथ देखता हुआ मैं हूं,

आपका सच्चा—

न (N)

जीवन शक्ति का बढ़ाना

रीरिक यन्त्र में (शरीर में) निरोगता वापिस लाने वाली आवश्यक शक्ति के प्राप्त करने के लिये यह उचित है कि प्रत्येक ऐसी बात से लाभ उठाया जाय जो कि हमारे अभिप्राय प्राप्त करने में हमको सहायता पहुंचाती हो। प्रत्येक प्रकार की चिकित्सा विधि में जिसका उद्देश्य शरीर से विकृत पदार्थों का बहिष्कार करना होता है, जीवन शक्ति की एक विशेष मात्रा की आवश्यकता होती है, और मेरी चिकित्सा प्रणाली इस नियम से रहित नहीं है। जिस दशा में विकृत पदार्थीय संग्रह गूमड़ों के रूप में पाया जावे तो यह इस बात का चिन्ह है कि जीवन शक्ति अत्यन्त अधिक न्यून होचली है, नहीं तो विकृत पदार्थ इतना कड़ा न होगया होता। चिकित्सा करने में हमको यथा शक्ति हर प्रकार से कोई यत्न इस गिरी हुई जीवन शक्ति के बढ़ाने का करना चाहिये। और साथ ही साथ ऐसी प्रत्येक बात से बचाव करना चाहिये जो उसको घटाने वाली हो।

इस अवसर पर मैं जीवन शक्ति के विषय में विस्तार पूर्वक

वर्णन नहीं कर सकता; जो कुछ कि यहाँ पर विचारणीय है वह यह प्रश्न है कि उसको (अर्थात् उस जीवन शक्ति को जो प्राप्त है) हम किस प्रकार स्थिर रख सकते हैं, या किस रीति पर फिर उसे (अर्थात् जो कि जा चुकी है) प्राप्त कर सकते हैं।

जो भोजन कि हम खाते हैं (और उसमें अवश्य ही वह वायु सम्मिलित है जिसे कि हम श्वाँस द्वारा भीतर पहुंचाते हैं) उससे हम नित्य नवीन असली शक्ति पैदा करते हैं।

अतः भोजन, जीवन शक्ति को स्थिर रखने या उसके बढ़ाने में सबसे अधिक एक आवश्यक पदार्थ है, इस कारण भोजन करने में हमको प्रत्येक बात पर जो अपना प्रभाव जीवन शक्ति पर डालती हो ध्यान देना उचित है।

निदान, शरीर को भोज्य पदार्थ से बल पहुंचाने के प्रश्न को मैं भली प्रकार (अर्थात् पूर्ण रीति पर) निम्न लिखित चार प्रश्नों के उत्तर द्वारा वर्णन करूँगा।

(१) किस रीति पर हमारा भोजन शरीरावयव होना चाहिये ?

(२) हमको क्या खाना चाहिये ?

(३) हमको कहाँ खाना चाहिये ?

(४) हमको कब खाना चाहिये ?

———

(१) किस रीति पर हमारा भोजन शरीरावयव होना चाहिये ?

शरीर खाये हुए भोजन से वह अँश प्राप्त करने का यत्न करता है जोकि शारीरिक यन्त्र की बनावट और शारीरिक क्रिया संचालन के लिये अवश्य सहायक हैं। पाचन क्रिया द्वारा इस प्रकार का पदार्थ भोजन से प्राप्त होता है, और शरीरावयव किया जाता है। हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम पाचन क्रिया की पृथक् २ कार्य्यवाहियों पर विचार करें, क्योंकि हमको उसे समष्टि रूप से एक क्रिया मानना है। यह क्रिया निस्सन्देह उस समय तक, जब तक कि शरीर में पचाने के लिये कुछ न कुछ पदार्थ मौजूद है; लगातार जारी रहती है। उसका प्रारम्भ उसी समय से होजाता है जब कि हम भोजन को मुख में लेकर चबाना प्रारम्भ करते हैं; और जहाँ तक कि भोजन के एक भाग (हिस्से) से सम्बन्ध है, मल के प्रकार की एक चीज़ के निकलने पर समाप्त होजाता है, और जो भाग कि शरीर में रह जाता है वह धमनियों, फेफड़ों और यकृत इत्यादि के द्वारा फिर शरीरावयव होता है, और उसके अन्तिम अँश त्वचा और गुर्दों द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं। शरीर को अपनी संचालन क्रियाओं को स्वयं ही क्रम देना चाहिये। और यदि ऐसा नहीं होता है

तो शरीर के किसी एक भाग की क्रिया को प्रभावित कराना भूल है। शारीरिक गति एक पृथक् वस्तु है, और उसमें किसी प्रकार की खराबी होने से सम्पूर्ण कार्य्यवाही की अनियमता प्रकट होती है, और फिर हम यही कहेंगे कि पाचन क्रिया की कार्य्यवाही का कोई दोष होना, अन्य किसी प्रकार के दोषों की तरह, यह बात बतलाता है कि कुल शरीर में खराबी होगई है।

इस प्रकार से शरीर उन सम्पूर्ण पदार्थों को जो निरोगता के लिये आवश्यक हैं पाचन क्रिया द्वारा शरीरावयव कर लेता है। यहक्रिया मानो कि (किसी वस्तु का अर्क निकालने की भाँति) रस खींचने की क्रिया हैं, जिसके द्वारा कि "सत" प्राप्त किये जाते हैं। और कोई दूसरी ऐसी क्रिया नहीं है, जिसको सचमुच रूप से कह सकें कि वैसी ही क्रिया हैं, जैसी कि पाचन क्रिया। सब प्रकार की उपमाएँ न्यूनाधिक अपूर्ण हैं, पाचन क्रिया एक सब से अधिक विस्तृत विधि है। पाचन क्रिया के अङ्गों को उनके किसी प्रकार के काम से बचाने का यत्न करना एक बड़ी भारी भूल है, ऐसा करना मानो उनको निर्बल करना है; और इसके सिवाय मानुषी उपाय को इस समय तक पाचन क्रिया की कृत्रिम विधि की नक़ल उतारने में न अब तक

सफलता प्राप्त हुई और न कभी होगी।

यदि पाचन शक्ति निर्बल होगई है तो हमारा काम केवल यह होना चाहिये कि केवल वह कारण उपस्थित करें जोकि पाचन क्रिया के ठीक करने के लिये सब से अधिक अनुकूल सिद्ध हों! और शरीर को उससे अधिक भोजन कभी देना ही नहीं चाहिये जितना कि वह सहज में पचा सके। यदि हम पाचन शक्ति को प्राकृतिक रीति पर नियम पूर्वक ठीक करने लगें तो कुछ समय में हम शरीर को बल पहुँचा सकेंगे, और साथ ही साथ जीवन शक्ति भी बढ़ जावेगी।

अब मैं उन बातों की व्याख्या करता हूं जिन पर कि ध्यान देना चाहिये।

(२) हम को क्या खाना चाहिये ?

इस प्रश्न पर कुछ विस्तार पूर्वक विवाद मैंने अपनी पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" में किया है, किन्तु इस स्थान पर भी कुछ विशेष बातों पर फिर ध्यान दिलाता हूं।

जो भोजन कि हम खाते हैं वह वही होना चाहिये जिसको हमारी प्रकृति माँगती है। और जो अप्राकृतिक भोजन है उस से सख्त परहेज़ उचित है। इसलिये मैं "शाक भोजी" पक्ष को

पुष्ट करता हूं; क्योंकि माँस भक्षण अस्वाभाविक है ("आरोग्यता प्राप्त करने की नवीनविद्या" नामी पुस्तक जो हिन्दी में प्रथम वार छपी है उसके पृष्ठ १६१ से ३१५ तक देखिये) ।

भोजन चबाने के लिये दाँतों का मौजूद होना इस बात को सिद्ध करता है कि हमारे भोजन में मुख्य कर कड़ा (ठोस) भोजन होना उचित है। (यद्यपि मैं किसी प्रकार "शुष्क भोजन" की अनुमति नहीं देता हूं) और जो लोग अपाचन से कष्ट उठा रहे हैं उन को इसका वर्ताव करना उत्तम है। निर्बल आमाशय वाले ही वह व्यक्ति हैं जो द्रव भोज्य को भली भाँति नहीं पचा सकते, और यह विश्वास करना उनके लिये भूल है कि शोरबा, दूध, क़हवा, चाय, कोको, मदिरा, बीयर शराब (जौ से बना हुआ मद्य) इत्यादि उनको लाभ दायक होंगे। अधिक संख्या में निर्बल आमाशय वाले रोगियों की चिकित्सा करने में मुझे बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हुआ है जिसको कि मैं यहाँ लिखता हूं ।

पके हुए भोजन का, बिना पके हुए भोजन की अपेक्षा, पचाना सदैव अधिक कठिन है । वह भोज्य पदार्थ जो कि पूर्ण रीति पर पुख़्ता नहीं हुए हैं बहुत सरलता से पच जाते हैं; और जोकि पुख़्ता होगए हैं या जो खूब पक कर सड़ने ही वाले हैं, उनका पचाना अधिकतर कठिन है। निदान कच्चे फल और

स्कीमो लोगों का चित्र।

निरोग मनुष्य का चित्र ।

नवीन पत्तों को निर्बल आमाशय वाले रोगी अत्यन्त सरलता और शीघ्रता से पचा लेवेंगे। ऐसा भोजन अत्यधिक नहीं खाया जा सकता और जब पर्याप्त मात्रा खा ली जाती है तो शरीर तत्काल बतला देता है कि अब खाना बन्द कर देना उचित है।

प्रारम्भ में कच्चे फलों से ग्रहिणी (दस्तों की बीमारी) का सन्देह है, क्योंकि शीघ्र पचने वाला होने के कारण वह दूसरे पदार्थों को भी जो आमाशय में हो बाहर निकाल देता है। किन्तु यह शिकायत (दस्त आना) शीघ्र ही समाप्त होजायगी और तब यही फल पाचन शक्तिके ठीक होने में पर्याप्त सहायता पहुंचावेंगे।

कच्चा फल वृक्ष से तत्काल तोड़ा हुआ अच्छा मिलता है, वर्ना रक्खे रहने से उसके गुण में न्यूनता आजाती है, इसलिये देशी फलों को दूसरे देशों के फलों से बड़प्पन देना चाहिये। क्योंकि अन्तिम वर्णित की हुई पचने की योग्यता लम्बी चौड़ी सामुद्रिक यात्रा के कारण न्यून हो जाती है।

साधारणतया हम कह सकते हैं कि प्रकृति उचित भोजन उसी स्थान में उत्पन्न करती है जहाँ कि मनुष्य निवास करते हैं, यथा—यह यत्न किया गया था कि दक्षिण देशों से भोजन पहुंचाया जाय, ताकि स्कीमो (ग्रीन लैण्ड निवासी) लोगों की साधारण

दशा और उसी के साथ उनकी अरोग्यता वृद्धि कर जावे, तो यह बात शीघ्र ही सिद्ध होगई कि बाहर से लाई हुई भोजन सामग्री ने उनकी अरोग्यता की और भी अधिक जड़ उखाड़ दी।

यदि भूमि के किसी खण्ड में मनुष्य के योग्य भोजन पैदा नहीं होता तो यह इस बात का चिन्ह है कि वह स्थान मनुष्य के निवास योग्य नहीं है, अतएव शीत कटि बन्धस्थ देशों को ऐसा ही समझना चाहिये, निदान वास्तव में कोई स्कीमो कभी सच्चा निरोग नहीं होता और न कभी बड़ी आयु को पहुंचता है।

यह सत्य है क स्कीमों लोगों का समुदाय चित्र पृष्ठ (१६१) के देखने से ऐसा मालूम होता है कि वह लोग खूब हृष्ट पुष्ट शरीर वाले मनुष्य हैं, किन्तु वास्तव में वह सब के सब विकृत पदार्थीय भार से बहुत भरे हुए हैं। दुर्भाग्य वश यह बात फ़ोटो से जो एक रसिक चित्रकार की खींची हुई है, भली भाँति प्रकट नहीं हो सकती। स्कीमो लोगों की जीवन शक्ति बहुत गिरे हुए दर्जे की होती है, और वह समय दूर नहीं है जब कि कदाचित् वह लोग इस संसार से मिट जायँगे।

और इसके विपरीत हो भी क्या सकता है ? उन लोगों को विवशतया लगभग माँस पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ता

है। यह सत्य है कि वह लोग हर प्रकार के नवीन उगे हुए पौधों को जोकि उस थोड़े से काल में, जब कि पृथ्वी पर बर्फ़ नहीं हाता है, पैदा होते हैं। बड़ी रुचि से खाते हैं, लेकिन पौधे उस हानि को जो कि अस्वाभाविक भोजन के प्रयोग से पहुंच चुकी है दूर करने के लिये पर्याप्त नहीं होते, चाहे थोड़ी बहुत बिहतरी पैदा करने में सहायता पहुंचावें। उन स्कीमो लोगों में जो समुद्र के किनारे रहते हैं और मछलियाँ अधिकतर खाते हैं, विकृत पदार्थीय भार कम अंश में होता है, उसका कारण यह है कि उबाली हुई मछली माँस की अपेक्षा और विशेष कर पालतू पशुओं के माँस के कम हानि कारक हैं।

मध्य कटि बन्ध के निवासी अधिक सौभाग्यशाली हैं, और हमारी बसन्त ऋतु नवीन (ताज़ा) शाक पात व फलों को हमें पहुंचाकर हमको इस बात का अवसर देती है कि हम उनको खाकर अपनी पाचन शक्ति और जीवन शक्ति की वृद्धि करें।

साधारणतः इस प्रकार के भोजनों का मानव जाति के लिये कुछ मूल्य नहीं समझा जाता, लेकिन यह विचार जीवन शक्ति के नियमों से नितान्त अनभिज्ञ होने के कारण उत्पन्न हुआ है, मुझ को एक वस्तु का विशेषकर वर्णन करना आवश्यक है जो प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य शरीर के लिये अपेक्षित है, और वह ऐसी

वस्तु है जो प्रकट रूप से शरीर यन्त्र के लिये बिलकुल अनुपयोगी सी प्रतीत होती है, तो भी वह निस्सन्देह पाचन शक्ति की सहायता करती है, यह वस्तु "रेत" है। भोजन की प्राकृतिक अवस्था में रेत एक विशेष परिमाण में उस से लगी हुई रहती है और खूब धोये जाने पर भी उस से पूर्ण रूप से दूर नहीं हो जाती। वस्तुओं का धोया जाना बहुत सी बातों में लाभदायक है, किन्तु साथ ही साथ हमको एक ऐसी वस्तु से वञ्चित कर देता है जोकि शरीर के लिये नितान्त आवश्यक है। पशु स्वाभाविक ज्ञान से रेत खाते हैं और यदि यह उन को न मिले तो बीमार हो जाते हैं। हमारे लिये मुर्ग़ियों और केनारी द्वीप के पक्षियों इत्यादि का उदाहरण उपस्थित है। उनको यदि रेत नहीं मिलती तो उनके पंख मैले और खुरदरे होजाते हैं। शुतुर्मुर्ग़ जिस के पर कि ऐसे सुन्दर होते हैं, मरुस्थल में रहता है और जब पालतू होकर बाड़े में रहता है जहां कि रेत इतनी अधिकता से नहीं होता तो उसके पंखों का सौन्दर्य्य नष्ट हो जाता है, चाहे कितना ही उत्तम भोजन क्यों न दिया जाय, किन्तु बिना रेत के उनके परों की दशा में वृद्धि नहीं होसकती। इसलिये मनुष्य के वास्ते भी एक विशेष मात्रा रेत की आवश्यक प्रतीत होती है। इसीलिये बिना चोकर निकला हुआ

आटा और उसी की बनी हुई रोटी खाना, मैदा की रोटी और अन्न के गूदे की रोटी की अपेक्षा, अवश्य उत्तम होती है, क्योंकि अन्न के ऊपरी छिलके (चोकर) में रेत के बारीक कण सदैव लगे रहते हैं।

अत्यन्त सावधानी से पशुओं का अवलोकन करने के पश्चात् मैंने यह ज्ञात करने के लिये कि रेत की थोड़ी मात्रा खाने से मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ? क्रमबद्ध अनुभव प्रारम्भ कर दिये और परिणाम ऐसे सन्तोष दायक हुए कि उनका प्रकट करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रारम्भ में मैंने साफ़ रेत चुना अर्थात् समुद्र का रेत (बालू), यद्यपि कदाचित् नदियों की उत्तम बालू (रेग) से भी एकसाँ ही अभिप्राय सिद्ध हो जाता, और जर्मन समुद्र के किनारे से रेत लिया जो ऐसा बारीक था कि बिना कठिनाई के निगला जा सकता था। यह जानना आनन्द की बात है कि ऐसा रेत गन्दगी को साफ़ करने का गुण रखता है। इसकी सत्यता सिद्ध करने के लिये निम्न लिखित परीक्षण किया जाना चाहिये।

एक कमरा जिसकी वायु रुई या दूध के जलने से गन्दी हो चुकी है उसमें कुछ मुट्ठी सामुद्रिक रेत लेकर, अग्नि से खूब गर्म सुर्ख़ किये लोहे पर गर्म करने से आश्चर्य्य प्रतीत होगा कि

कैसी जल्दी गंध दूर होजाती है । परीक्षण करने की दशा में खिड़कियाँ बन्द रखना चाहिये ताकि रेत का पूरा २ प्रभाव ज्ञात हो ।

मरुस्थलीय देशों में वायु सदैव शुद्ध व पवित्र होती है, क्योंकि रेत प्रकृति की बनाई हुई शुद्ध करने वाली वस्तु है । यदि रेत में कुछ भी चिकनी मिट्टी मिला दी जावेगी तो उसका ऐसा बड़ा प्रभाव न होगा ।

अब हम प्रश्न करते हैं कि क्या रेत इसी प्रकार का प्रभाव शरीर के भीतर की अशुद्ध वायु और अशुद्ध पदार्थ को साधारण रीति पर नष्ट करने में नहीं करेगा ? या अतिशयोक्ति प्रकार पर (यों कहा कि) क्या वह उस दल २ को नहीं सुखावेगा जिसमें बेसिलाई वृद्धि पाते हैं ?

रेग के प्रभाव की सत्यता देखने के लिये जो अगणित परीक्षण मैंने किये वह सब उसके उत्तम गुण प्रकट करते हैं अतः इसस्थल पर एक आश्चर्य्य जनक उदाहरण दृष्टि गोचर कराता हूं ।

एक स्त्री युवावस्था से ही बद्ध कोष्ठ (क़ब्ज़) रोग में फँसी हुई थी, और भिन्न २ औषधियों का प्रयोग कर चुकी थी, परन्तु कुछ भी गुण किसी ने नहीं किया । जब वह ५०

वर्ष की हुई तो उसका यह रोग ऐसा कष्टदायक हो गया कि सचमुच उसकी दशा शोचनीया हो गई। कोई रेचन (जुलाब) कुछ काम नहीं देता था, और कभी २ सप्ताहों तक (वह कहती थी कि एक बार पांच सप्ताह तक) आँतें अपना काम करने से वञ्चित रहीं। जब वह मेरे पास आई तो मैंने ४–५ फ्रिक्शन और हिप-बाथ नित्य और भोजन में बिना चोकर निकला हुआ आटा और खट्टे फल खाने को बतलाए, यह चिकित्सा कोष्ठ बद्ध में कदाचित् भूल कर ही गुण न करती हो; किन्तु अवसर पर सफलता नहीं हुई। इसलिये मैंने दिन में दो तीन बार एक २ चुटकी समुद्र के रेत की ठीक भोजन करने के पश्चात् प्रयोग कराकर परीक्षण किया, इसका परिणाम आशा से कहीं अधिक शीघ्र और सफलता का हुआ, और यहाँ तक कि दूसरे दिन शौच (पाखाना) आया; प्रथम पाखाना, स्याह, सख़्त, गठीला हुआ, किन्तु कुछ समय में बिल्कुल ठीक होगया। बतलाए हुए स्नानों पर भी पूरा २ ध्यान दिया गया था।

इस अवसर पर हम देखते हैं कि रेत (बालू) ने एक बहुत सन्तोष दायक फल दिखलाया और वस्तुतः यह एक प्राकृतिक नियम पाचन शक्ति को बनाये रखने या उसके सुधार में सहायता करने का है।

पुरानी चाल के चिकित्सक अवश्य इस बात को स्वीकार न करेंगे कि रेत में किसी प्रकार का गुण है, और प्रत्युतः वह घुलने वाली वस्तु नहीं है, उसके बहुत से छोटे २ परिमाणु शरीरावयव होने के योग्य होंगे। वह (उपरोक्त चिकित्सक) रसायन शास्त्र की सहायता से ठीक २ परिमाणुओं को जोकि शरीर की बनावट के लिये आवश्यक हैं जानने का यत्न करेगा, वह अन्त में शरीर के भिन्न २ अवयवों को उनके परिमाण और वजन को बतलावेगा और उनमें से हर एक की ठीक २ मात्रा को कि कितना नित्य खाना चाहिये; बतलाना पसन्द करेगा। उस व्यक्ति पर शोक है जो अपने आपको ऐसे भोजन के प्रयोग पर जिसकी नींव इस प्रकार के अटकल पर है, छोड़दे। यह यत्न भी किया गया है कि भोजन में से पालन करने वाले परिमाणु यथा सम्भव शुद्ध (अमिश्र) दशा में प्राप्त किये जावें अर्थात् सतके रूप में शरीर के लिये उत्पन्न किये जावें, यह भारी भूल है। शरीर केवल भोजन ही नहीं चाहता अपितु उसके अङ्गों को कुछ काम करना भी आवश्यक है, क्योंकि यह बात काम करने ही के कारण है कि वह निरोग बन सकते हैं, और ठीक रह सकते हैं। पाचन अङ्गों को स्वयं ही निस्सन्देह सत प्राप्त करना चाहिये, जिससे कि रक्त, माँस, हड्डी, स्नायु, बाल इत्यादि और पचाने

वाला रस भी यथा-तेज़ाब और मद्य, आलकोहल। स्वाभाविक भोजन में सब आवश्यक भाग उचित पर्याप्त मात्रा से मौजूद हैं, केवल, शरीर में उनसे रस खींचने की शक्ति यथेष्ट होनी चाहिये, और शरीर को हवाओं का पैदा करना भी भोजन की गति को बनाये रखने और उसको नीचे लेजाने के वास्ते आवश्यक है, यदि उचित प्रकार से हवाएँ न पैदा हों तो रुकावटें पैदा हो जावेंगी और आंतें नितान्त बेकार हो जावेंगी और कदाचित् तब विकृत पदार्थ शिरकी ओर जायगा। और शिर के दर्द पैदा हो जावेंगे, किन्तु ऐसी अनियमता केवल उसी समय हो सकती है जबकि विकृत पदार्थ से शरीर भरा हो या अस्वाभाविक भोजन किया गया हो।

मुझे कुछ वर्णन बच्चों के भोजन का भी करना उचित है। बच्चों के लिये अकृत्रिम भोज्य माता का दूध है, और जिन बच्चों को यह नहीं मिलता वह बच्चे बड़ी हानि उठाते हैं और पूर्ण निश्चय है कि उनमें विकृत पदार्थीय भार होजायगा। चित्र सं० ४८ एक ऐसे बच्चे का चित्र है जिसको उसकी माता ने अपना दूध पिला कर पाला था। उस बच्चे से चित्र सं० ४९ व ५० वाले बच्चे से तुलना कीजिये, जिनका पोषण कृत्रिम रीति से हुआ है। दोनों के शिर बहुत बड़े और पेड़ू आगे को

अत्यन्त अधिक निकले हुए हैं। ऐसे बच्चे लगभग, सदैव तमीज़दार (चतुर) होते हैं। समय की यह मुख्य बात है कि अब अधिकतर बच्चे विचित्र पैदा होते हैं अर्थात् अल्पायु में आश्चर्य्य जनक मस्तिष्क सम्बन्धी योग्यता प्रकट करते हैं। यह बेचारे बालक अत्यन्त दयनीय हैं, कुछ समय तक तो उनका तमाशा बनाकर दिखलाया जाता है और धोखे में आये हुए माता पिता बहुधा उन पर अभिमान करते हैं, किन्तु कोई बच्चा उन उच्च आशाओं को जो उनमें स्थापित की जाती हैं पूरा नहीं करता, क्योंकि समय से पूर्व बुद्धि की परिपक्वता अशुभ लक्षण है। समय से पूर्व बुद्धि का परिपक्व होना उस समय प्रकट होता है जब कि अत्यन्त दबाव मस्तिष्क पर पड़ने के कारण मस्तिष्क, आवश्यकता से अधिक वृद्धि पाता है। यदि यह या वह (अर्थात् कोई) भाग विकृत पदार्थ से भर जाता है तो ऐसा भाग फुर्तीली हो जाता है। फ़्रीनालोजिस्ट [1] भी इस आंशिक उन्नति का वर्णन करते हैं, किन्तु वह यह नहीं पहिचान सकते कि यह बात बुरी है, क्योंकि वह कारण से अनभिज्ञ हैं।

१—नोट अर्थात् फ़्रीनालोजी का ज्ञाता—फ़्रीनालोजी उस विद्या को कहते हैं जिसके द्वारा कि शिर की आकृति मात्र देखने से मनुष्य की मस्तिष्क शक्तियों का और उसके मन और तबियत का अनुमान किया जा सकता है।

चित्र सं० ४८ * निरोग बच्चे का चित्र।

आकृति–अंगों के परिपूर्ण होने में सम्बन्ध बन रहा है (अर्थात् सब अंगों में समान और मुनासिब सम्बन्ध है)। शिर–आयु के विचार से ठीक डील डौल का है। अन्य अंग भी उसी प्रकार ठीक डील डौल के हैं, विशेष कर पेड़ू के ठीक डील डौल को देखिये।

इस बच्चे का पोषण माता ने (अपने दूध से) किया था और वह ९ मास की आयु में पैदल चलने लगा था, चित्र लेते समय वह एक वर्ष का था।
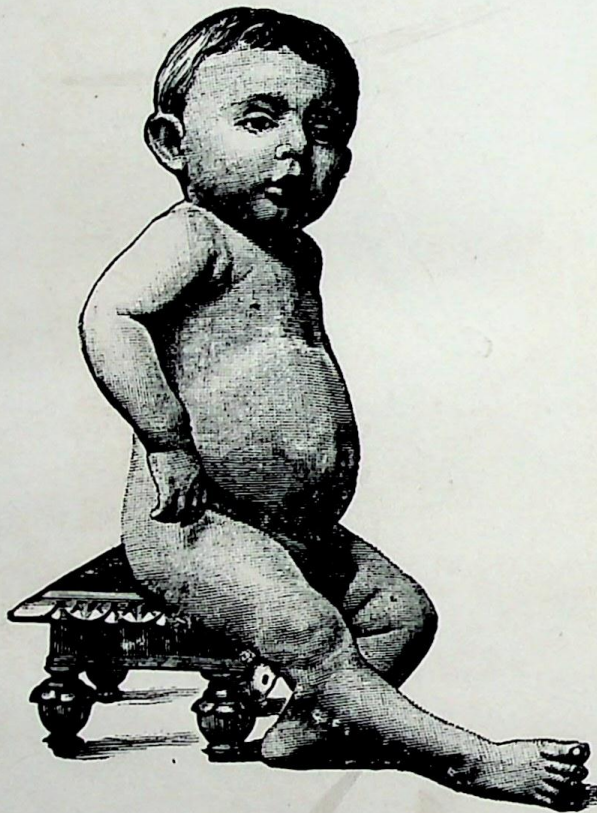
चित्र सं० ४६ * सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार ।

आकृति–मोटी और भद्दी। शिर–बहुत बड़ा। मस्तक–इस पर चर्बीली गद्दी मौजूद है। नासिका–बहुत मोटी। मुख–खुला हुआ। ग्रीवा–बहुत मोटी और छोटी; गर्दन पर सीमा विभाजिनी रेखा नहीं है। पेड़ू–अत्यधिक उभरा हुआ। बाजू और टाँगें–खूब फूले हुए।

यह बच्चा विशेष विधि से पकाये हुए दूध द्वारा पाला गया था और १ वर्ष ६ महीने की आयु में स्वयं कठनाई से बैठ सकता था।
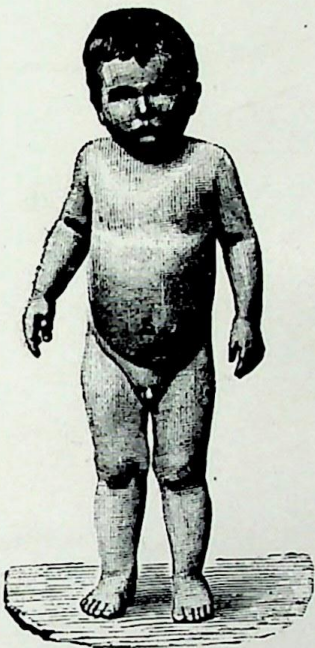
चित्र सं० ५० * **चित्र सं० ५१ ***

सम्पूर्ण शरीर का विकृत पदार्थीय भार :
(यह एक ३ वर्ष का बच्चा है जो सामने से और पार्श्व से दिखाया गया है)

आकृति–भारी और टेढ़ी मेढ़ी। **शिर**–अधिक बड़ा। **मस्तक**–इस पर बहुत अधिक चर्बीली गद्दी मौजूद है। **आँखें**–बहुत अधिक गड़ी हुईं, लगभग अंधा। **ग्रीवा**–सीमा विभाजिनी रेखा लुप्त है, शिर कठिनाई से घुमाने योग्य। **पेड़ू**–नीचे को लटका हुआ, और विकृत पदार्थ से भरा हुआ। **बाज़ू और टाँगें**–मोटी, किन्तु कड़ा और लचक रहित।

यह बच्चा भी विशेष विधि से पकाये हुए दूध द्वारा पाला गया था।

चित्र सं० ५२ * पार्श्वीय भार तथा सम्मुख भार।

रूप व आकृति–निरोग। शिर–तालू पर अधिक चौड़ा। मस्तक–निकला हुआ। आँखें–चमकदार। नासिका–मध्यम कोटि। मुख–मध्यम कोटि।

मैंने ऐसे बच्चे देखे हैं जो ७ वर्ष की आयु में २० वर्ष की आयु के ज्ञानवान् लड़के से वार्तालाप करने की योग्यता रखते थे; किन्तु ऐसे बच्चे २० वर्ष की आयु में साधारणतः अपने अन्य समान वयस्कों से बहुत पीछे रह जाते हैं। यह ही दशा नृत्य और तमाशों में करामात दिखाने वाले बच्चों की है जो प्रारम्भ में पूर्ण आश्चर्य और विस्मय जनक होते हैं, किन्तु कुछ वर्षों के व्यतीत होने पर लोग उनको भूल जाते हैं, क्योंकि उन में सच्चे गुणी होने की आवश्यक योग्यता का अस्तित्व नहीं होता है।

चित्र सं० ५२ पोहलर नामी बालक की है जो आज कल देश के (जर्मनी के) बड़े २ नगरों में जनता के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है। आयु के विचार से इस बच्चे का शरीर खूब हृष्ट पुष्ट ज्ञात होता है, अतः डाक्टर लोग उसकी शारीरिक दशा में कोई नवीन बात नहीं पाते और उसको विचित्र समझते हैं, किन्तु इस अवसर पर भी "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन,, डाक्टरों पर सबक़त (बड़प्पन) लेगया है। यद्यपि यह चित्र हमारे ही उद्देश्य पूर्ति के लिये तैयार नहीं किया गया है, तौ भी उस का घुमावदार मस्तक दृष्टि गोचर होता है जो कि विकृत पदार्थ का बड़ा दबाव आँखों की ओर

को प्रकट करता है। और आँखे शीशे की तरह चमकदार दिखाई पड़ती हैं। अतः इस लड़के की पाचन शक्ति स्पष्ट रूप से ठीक नहीं है, उसमें निस्सन्देह सम्मुख ओर और पार्श्व ओर विकृत पदार्थों का भार है, यद्यपि यह बात हम चित्र से ज्ञात नहीं कर सकते हैं। शिर तालू पर बहुत चौड़ा है और मस्तिष्क इस बच्चे की आयु के बिचार से असाधारण रीति से बढ़ गया है।

—=:=—

(३) हमको कहां खाना चाहिए ?

यह प्रश्न यद्यपि व्यर्थ प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः व्यर्थ नहीं है। ऊपर कही भांति फेफड़ों के उचित भोज्य [अर्थात् वायु] पर बहुत कुछ निर्भर है, अच्छी और स्वच्छ वायु जीवन शक्ति बढ़ाने के लिये और जीवन के लिये इतनी ही आवश्यक है जितना कि उत्तम भोजन। भोजन करनेके समय हम स्वयं गहरी श्वाँस लिया करते हैं और (इस प्रकार) फेफड़ों में अधिक वायु पहुंचती है; और वायु निगली जाकर आमाशय में पहुंचाई जाती है! अतः अब किसी तरह पर यह बात लापर्वाही की नहीं है कि यह वायु (जिसमें बैठकर हम भोजन करते हैं) अच्छी है या बुरी ? इसलिये मकान से बाहर भोजन करना

सब से उत्तम है यदि ऋतु आज्ञा देवे (अनुकूल हो); निदान प्रत्येक अवस्था में भोजन करने का मकान प्रकाश युक्त, धूप-दार, और खूब वायु वाला होना चाहिये ।

यह बात नाज़ुक दशा वाले रोगियों के लिये जोकि अपनी गिरी हुई जीवन शक्ति बढ़ाने का उपाय कर रहे हैं, विशेष कर अत्यावश्यक है।

---

(४) हमको कब खाना चाहिये ?

इस प्रश्न का उत्तर विवरण सहित होना उचित है । साधारण रीति पर हम कह सकते हैं कि जब क्षुधा लगे तब खाना चाहिये । किन्तु यह बात हमारे अधिकार में है कि हम अपनी दिन चर्य्या को ऐसे क्रम से रक्खें कि जिस से भूख का भी समय परिवर्तन कर सकें । बहुधा लोग ऐसी अनियमित रीति से जीवन व्यतीत करते हैं कि उनको कुसमय भूख लगती है और वह उस समय ठीक अर्थात् निरोगता की क्षुधा नहीं होती। यदि हम पशुओं पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि वह लग भग सब के सब प्रातः काल भूख के चिन्ह प्रकट करते हैं और उसी समय पूर्ण भोजन करते हैं । इस बात का एक अत्यन्त उचित कारण है जिसका क्रम सूर्य्य के प्रभाव से मिलाया

जाता है।

दिन दो भागों में विभक्त है (१) कार्य्य करने का समय (२) विश्राम करने का समय।

प्रथम भाग (वक्त़ नमू) सूर्योदय से प्रारम्भ होता है जो सूर्य्य कि कुल नेचर (सृष्टि) को, नये सिरे से काम करने के लिये जगाता है। प्रातः के सूर्य का प्रभाव जोकि वृक्षों पर पड़ता है उसका मूल्य कृषक लोग और बाग़बान खूब जानते हैं, जिन वृक्षों को प्रातः काल की धूप नहीं मिलती वह या तो बिल्कुल ही नहीं फलते या कम फलते हैं। और यदि किसी वृक्ष के किन्हीं भागों में धूप लगती है तो साधारणतया यही पाया जायगा कि फल भी उन्हीं हिस्सों में पैदा होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य, चाहे वह यत्न भी करे, अपने आपको सूर्य्य के प्रभाव से पृथक् नहीं रख सकता, और यदि नेचर(प्रकृति) की आज्ञा पालन करता है और प्रातः काल उठ कर शीघ्र खुली वायु में निकल जाता है तो वह तत्काल सूर्य की किरणों के लाभदायक और जीवन वर्द्धक प्रभाव को अनुभव करेगा।

मनुष्य को स्वाभाविक इस विषय पर कि विश्राम करने का समय [वक्त़ सिकून] क्या शिक्षा देता है विचार करना उचित है। विश्राम समय का प्रारम्भ उसी समय होता है जब

कि सूर्य्य का ढलना प्रारम्भ होता है, अर्थात् दोपहर से। इस समय का प्रभाव यह है कि चेतनता को क्रमशः घटावे और निर्बल करे, यहाँ तक कि अन्त को डूबता हुआ सूर्य्य आराम तथा विश्राम की दशा उत्पन्न कर देता है, और उस समय में मनुष्य भी दूसरे पशुओं की भांति निद्रा का अत्यन्त इच्छुक हो जाता है। निदान "कार्य्य करने वाले समय" (ज़माः नमू) में हमारे काम करनेकी शक्ति को गति होती है और शरीर में द्रढ़ता और नवीनत्व प्रतीत होता है। "विश्राम काल,, ढीलापन पैदा करता है और शरीर को थकावट होजाती है और आराम करने की इच्छा होती है, यही दशा पाचन यन्त्रों में भी होजाती है। प्रातः काल, दोपहर की अपेक्षा पाचन शक्ति उत्तम होती है, और संध्या के लग भग पाचन शक्ति और भी निर्बल होजाती है। इस से परिणाम यह निकलता है कि विशेष कर प्रातः काल और दिन के आदि भाग में भोजन करना चाहिये, और दोपहर के पश्चात् केवल लघु मात्रा में भोजन करना चाहिये। बहुत निर्बल रोगियों को विशेषकर इस बात पर ध्यान करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकार उनको यथा शक्ति अपनी जीवन शक्ति से काम लेने और उसको फिर ठीक दशा में लाने का साधन [ज़रिया] मौजूद है।

यह आक्षेप हो सकता है कि उन मनुष्यों को जोकि बीमार होते हैं, प्रातः काल के समय बहुत ही कम क्षुधा लगती है और यह कि बिना भूख के उन से आशा नहीं की जा सकती कि वह भोजन करेंगे। किन्तु प्रातः काल के समय भूख का न लगना इस बात का पूरा चिन्ह है कि या तो पाचनेन्द्रियें अत्यन्त निर्बल हैं या कुसमय काम करने के लिये बाध्य की गई हैं, हमारे नवीन प्रकाश निर्माण विधि ने ऐसा कर रक्खा है कि हम बहुधा रात्रि को दिन बना लेते हैं। सभ्यता की ऐसी बड़ी प्राप्ति को अधिकतर हम अपनी हानि के लिये प्रयोग करते हैं। अतः रग पट्ठों की निर्बलता का रोग अधिक होगया है जिसके कारण इस समय को "रग पट्ठों की निर्बलता का समय" कहते हैं, तो इस में आश्चर्य्य ही क्या है ? परन्तु यह समय का अपराध नहीं है कि जिस से "न्यूरसथीनिया" देखने में आती है। बल्कि यह हमारी जीवन विधि ऐसी है जोकि पीठ की ओर का विकृत पदार्थीय भार उत्पन्न करने में विशेष कर सहायक है।

भोजन बहुत देर से खाये जाते हैं और सचमुच प्रायः घरों में सायंकाल का भोजन (अर्थात व्यालू) ऐसे समय पर किया जाता है कि जिस समय "सचमुच" मनुष्य को बहुत समय पूर्व सो जाना चाहिये था। इतनी देर से खाया हुआ भोजन भली प्रकार पच

नहीं सकता, पाचन यन्त्रों पर इतना भार डालता है कि वह प्रातः काल तक ठीक नहीं होने पाते, जिसके कारण कि उस समय किञ्चिन्मात्र भी क्षुधा नहीं लगती। इसके सिवाय, रात्रि में शरीर को पूरा २ आराम भी नहीं मिलेगा, क्योंकि बिना पचा हुआ भोजन उसको काम करने के लिये उकसाता है, जिसके कारण प्रातः काल, कदाचित्, उसकी अपेक्षा, जिस प्रकार कि गत रात्रि में मालूम हुई थी, अधिक थकावट मालूम होती है।

इन सब बातों के परिवर्तन करने के लिये केवल थोड़ी दृढ़ता की आवश्यकता है, और जो लोग कि रोगी हैं, उनको यदि वह निरोगता के अभिलाषी हैं, तो यह शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये।

किसी मनुष्य को एक रात्रि बिना खाये या नाम मात्र थोड़ा सा खाकर सोजाने का यत्न करने दीजिये, तो प्रातः काल उसे निश्चय ही क्षुधा प्रतीत होगी। वास्तव में यह अवश्य होगा कि इस रीति पर चलने में जीवन चर्य्या का कुल प्रकार बदलना होगा, और सम्भव है कि बहुतों को शीघ्र सोने का स्वभाव डालना एक कठिन कार्य्य जान पड़े, किन्तु यह सब स्वभाव के सम्बन्ध की बात है। किसी प्रकार की थकावट से कदापि न रुको और प्रातः काल उठो। (अतः) सायंकाल को निश्चय पूर्वक शीघ्र ही आराम करने की इच्छा उत्पन्न होगी, और शरीर आशा के विपरीत बहुत

शीघ्र प्राकृतिक नियम में रहने का अभ्यासी होजावेगा।

यथा सम्भव हमको चाहिये कि सब कामों को "कार्य्यकाल" में करने का प्रबन्ध करें, यही काल परिश्रम के लिये रक्खा गया है न कि "विश्राम काल"। और केवल प्रथम वर्णित समय (कार्य्यकाल) में ही वह काम करना उचित है, जो मानव सृष्टि के लिये अत्यावश्यक है, अर्थात् गर्भाधान क्रिया। तो उस समय का गर्भ सर्वथा परिपक्व होगा, और स्वयं बच्चे पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। और जब हम यह बात स्मरण करते हैं कि यह बात उत्तम और अधिक निरोग सन्तान की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखती है, तो प्रत्येक व्यक्ति का यत्न अत्युत्तम साधनों के प्राप्त करने का होना चाहिये। बहुधा ऐसा देखा गया है कि जो लोग अपने आपको नपुंसक होने का विश्वास रखते थे, क्योंकि "विश्रामकाल" में उनका शरीर गर्भस्थिति करने की आवश्यक शक्ति नहीं रखता था। उनको ज्ञात हुआ है कि "कार्य्यकाल" में उन में सन्तानोत्पत्ति की ठीक शक्ति वर्तमान है। ठीक २ अन्तर दोनों समयों का इस स्थल पर स्पष्ट प्रतीत होता है। पूर्ण निरोग मनुष्यों को भी शिक्षा दी जाती है कि रात्रि में मैथुन करने से बचें, क्योंकि उस समय की यहक्रिया शरीर को निर्बल करती है, और काम काज की चिन्ता, हैरानी, और बिना नियम से जीवन व्यतीत करना, यह सब बातें

सन्तान पर बुरा प्रभाव डालती हैं। और कौन ऐसा व्यक्ति है जो ऐसी सब बातों से न बचेगा, जोकि उसकी सन्तान के लिये हानि कारक हों ?

यदि वह मनुष्य जो सृष्टि नियम विरुद्ध अपना जीवन व्यतीत करते हैं, केवल प्रातः काल ही मैथुन करें तो उनके ग़लत रीति पर जीवन व्यतीत करने के परिणाम अपूर्ण बच्चे में सीधे परिवर्तित न होनें पावेंगे, क्योंकि रात्रि में शरीर अपनी खोई हुई शक्ति थोड़ी बहुत किसी प्रकार फिर प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ, मद्यके नशे के दुष्परिणामों को विचार में लाइये। आधे नशे की दशा में जिस में बच्चे की नींव स्थापित की जायगी, वह लगभग सदैव मस्तिष्क का मन्द सिद्ध होगा, और सम्भव है कि नितान्त बुद्धि हीन और नपुंसक भी होजावे। सम्भव है कि अन्य बातों में सृष्टि नियम बिरुद्धता, कम हानिकारक परिणाम उत्पन्न करे, किन्तु उनके साथ एक न एक प्रकार की बुराई सदैव लगी रहती है।

अतः मैं फिर कहता हूं कि इन दोनों कालों (एनी मेशन, और ट्रैंकिलिज़ेशन, अर्थात् "कार्य्यकाल" और "विश्रामकाल") का ध्यान रक्खें तो ज़ीवन शक्ति बहुत दिनों तक स्थिर रह सकती है और (खोई हुई) फिर शीघ्र प्राप्त हो सकती है। हमको अपने

जीवन काल को ऐसा क्रम देना चाहिये कि प्रातः काल के समय हम सब आवश्यक कर्त्तव्य पालन कर सकें, और उसी समय मुख्य भोजन खावें, ताकि दोपहर के पश्चात् हम अपने शरीर के भीतर काम करने की शक्ति को शनैः शनैः ढीला कर देवें और सायं काल को शीघ्र सोजावें।

तीव्र (एक्यूट) रोग "विश्राम काल" में अधिकतर कष्ट दायक होते हैं, क्योंकि शरीर उनसे इतना अधिक (जितना कि कार्य्य काल में) सामना नहीं कर सकता। वस्तुतः किसने इस बात को न देखा होगा कि ज्वर सदैव सायंकाल के समय वृद्धि पर होता है? यह इस कारण होता है कि उस समय में शरीर की अन्य क्रियाएँ निर्बल होजाती हैं।

परन्तु पूरे वर्ष में भी, कार्य्य काल और विश्राम कालका समय होता है। प्रथम उस समय प्रारम्भ होता है जब कि सूर्य्य उत्तरायण [1] होते हैं (अर्थात् मकर राशि के समीप पहुंचता है) और भिन्न २ जातियों का यह स्वाभाविक विचार हुआ है कि वह इस अवसर की यादगार में कोई बड़ा त्यौहार मनाते हैं।

बर्फ़ व शीतकाल में भी कार्य्यकाल का प्रभाव मालूम प-

नोट– (१) यह वह समय है जब कि ग्रीष्म का मध्य होता है; विलायत में यह समय २१ जून से पूर्व प्रारम्भ होता है।

ड़ता है। निदान वसन्त ऋतु वह समय है जब कि कार्य्य काल की शक्ति प्रत्येक स्थान में स्पष्टतया अनुभव में आती है, और उसका प्रभाव वृक्षों पर सरलता से दिखाई पड़ता है। यदि पतझड़ में इमार्ती लकड़ी के वृक्ष काटे जाते हैं तो उनकी लकड़ी उत्तम और दृढ़ होजाती है, किन्तु यदि फ़र्वरी या उसके कुछ पीछे तक नहीं काटे जाते तो उनकी लकड़ी देर तक रहने वाली नहीं होती, और उसको कीड़े शीघ्र ख़राब कर देते हैं (अर्थात् घुन जाती है)।

"कार्य्यकाल" में हम नेचर (प्रकृति) के अन्दर प्रत्येक स्थान पर तीव्रता के चिन्ह देखते हैं। पशुओं में चुस्ती और मन की प्रसन्नता आजाती है, और इसी समय में उनके बच्चे उत्पन्न होने का समय आता है, वृक्षों में कलियाँ निकलती हैं और वृक्ष शीघ्रता से वृद्धि करते हैं। साराँश यह है कि "कार्य्यकाल" का समय उत्पत्ति और वृद्धि का काल है।

इस काल में, फूलों में भी "विश्रामकाल" के प्रतिकूल एक नितान्त भिन्न प्रकार की गंध होती है, और कोई २ वृक्ष, जैसे—गुलाब, ग्रीष्म के अन्त में और पतझड़ की ऋतु में ऐसे उत्तम सुगन्ध युक्त पुष्प कभी उत्पन्न नहीं करते, जैसे कि वसन्त और ग्रीष्म के आरम्भ में (उत्पन्न करते हैं)।

जब कि सूर्य्य सब से ऊँचे बिन्दु १ पर पहुंच कर उतरना प्रारम्भ होता है उसी समय से विश्रामकाल तत्काल प्रारम्भ होजाता है। पशुओं में तीव्रता कम हो जाती है और वानस्पतिक जगत में उगने की शक्ति उतनी अधिक नहीं रहती, और साधारण बात यह है कि इस समय वही फल पकते हैं जो इस से पूर्व के समय में लगे थे।

इसी विश्रामकाल में महामारी २ रोग कार्य्यकाल की अपेक्षा अधिक दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि शरीर अब ज्वर का दैनिक विश्रामकाल की अपेक्षा न्यूनतर सामना करता है।

उन पशुओं में जो अपनी प्राकृतिक दशा में रहते हैं इस समय में (विश्रामकाल की ऋतु के प्रारम्भ में) भोजन की इच्छा कम हो जाती है, और शीत काल के आने पर ऐसे निर्बल हो जाते हैं कि साधारणतः वही थोड़ा भोजन जोकि उस समय प्राप्त हो सकता है, उनके शरीर बनाये रखने के लिये पर्याप्त होता है। पाचन शक्ति विश्रामकाल में शनैः शनैः न्यून हो जाती है, इसलिये मनुष्य को भी (इस काल में) कम भोजन करना चाहिये। अतः इस सिद्धान्तानुसार शरद ऋतु में व्रत रखना

नोट—(१) वर्ष के भीतर सबसे ऊँचे बिन्दु से अभिप्राय है।

नोट—(२) वबाई रोग।

बहुत ठीक है, किन्तु दुर्भाग्य से हम नितान्त उल्टी रीति से चलते हैं, अर्थात् हम शीत ऋतु में सब प्रकार के त्यौहार मनाते हैं। और डाक्टर, वैद्य वा हकीम लोग इसी ऋतु में हम को अधिक भोजन करने की अनुमति देते हैं, ताकि सर्दी को झेल सकें; यह एक ऐसी भूल है जिस के परिणाम बहुत बुरे होते हैं। प्राकृतिक नियम में रहने वाले पशुओं पर एक दृष्टि डालना ही प्रत्येक व्यक्ति की आँखें खोलने के लिये पर्याप्त है। जानवरों के पालने वाले और जंगलों के रक्षक इस बात को जानते हैं कि यदि पशुओं को निरोग रखना स्वीकृत है तो उनको अधिक भोजन नहीं देना चाहिये।

पृथिवी के ऊष्ण कटि बन्ध में, जहां कि अन्य कटि बन्धों की अपेक्षा सूर्य्य की स्थिति के स्थान में बहुत कम परिवर्तन होता है, ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा का प्रभाव अधिक पड़ता है। वहाँ एक मास में कार्य्यकाल और विश्रामकाल दोनों एक के पीछे एक दो बार बदलते हैं, किन्तु दैनिक परिवर्तन वही रहता है जैसा कि हमारे कटिबन्ध का है। ऊष्ण कटिबन्ध में यह देखा गया है कि जो मकानों में लगने वाली लकड़ी (शहतीरें) शुक्ल पक्ष (चढ़ते हुए चन्द्रमा के समय में) में काटी जाती है वह देर तक रहने वाली नहीं होती, और जोकि कृष्ण पक्ष (चन्द्रमा

की घटती कला के समय में) में काटी जाती है वह बहुत दिन तक ठहरने वाली होती है । अतः यहाँ हमको वही प्राकृतिक घटना दृष्टि गोचर होती है जोकि वर्ष के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती थी।

इन सिद्धान्तों और घटनाओं का क्या कारण हो सकता है ? मैंने एक कारण ख़याल किया है, किन्तु यह बात ठीक है वा नहीं इस का निर्णय करना है। उसको इस स्थान पर मैं कल्पना की भाँति लिखता हूं और इसलिये मैं बलपूर्वक कहता हूं कि नीचे की लिखावट काल्पनिक सिद्धान्त की तरह है जिसका सम्बन्ध इस पुस्तक से आवश्यक नहीं है, किन्तु मैं अपने इस पुस्तक के पाठकों से गुप्त नहीं रखना चाहता।

कार्य्यकाल और विश्रामकाल की घटना का कारण अवश्य वही होना चाहिये जो रात और दिन और गर्मी और सर्दी के होनेका कारण है । प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जानता है कि इन बातों की निर्भरता सूर्य्य और पृथिवी के घूमने की गति पर है। हम सब इस विचार के अभ्यासी होगये हैं कि प्रकाश और तेज (गर्मी) सीधे सूर्य्य से ही प्राप्त होते हैं । यह विचार मेरी सम्मति में ठीक नहीं है, कदाचित् पृथ्वी स्वयं अपनी कीली पर घूमने से गर्मी उत्पन्न करती है, प्रकृत्या सूर्य्य एक प्रकार का प्रभाव डालता है, कदाचित् वह किसी न किसी प्रकार की चुम्बकीय

(मक़नातीसी) किरणों को हमारे पास पहुंचाता है, और यह बात इन किरणों और पृथ्वी के परस्पर संघर्षण से है कि प्रकाश और गर्मी उत्पन्न होते हैं, जोकि फिर पृथ्वी के बाहर निकलते हैं। यह बात भली भाँति विदित है कि हम जितना ऊंचे वायु में ऊपर को चढ़ते हैं, उतना ही प्रकाश और गर्मी दोनों शीघ्र २ कम होते जाते हैं। यदि प्रकाश व गर्मी की किरणें सीधी सूर्य्य से आई होतीं तो ऊँचाई पर भी अपना प्रभाव दिखातीं, विशेष कर उस समय जब कि ठोस शरीर उनके शोषण (जज़्ब) करने के लिये प्राप्त है। पृथ्वी में वायु को शीघ्र गर्म करने की शक्ति है; सूर्य्य भी उसी प्रकार (वायुको) गर्म करने योग्य क्यों नहीं है, यदि वस्तुतः उसमें से गर्मी निकलती है ?

इसके विपरीत यदि स्वयं पृथ्वी ही प्रकाश और गर्मी उत्पन्न करती है, तो स्पष्ट प्रकट है कि जिस जगह घूमने की गति और गति के कारण रगड़ अधिक होगी, वहाँ यह दोनों (उष्णता और प्रकाश) अत्यन्त अधिकता से होना चाहिये, अर्थात् उष्ण कटि बन्ध में। ध्रुवों पर रगड़ वास्तव में शून्य के समान हैं, अतः हम वहाँ सर्दी और स्पर्श ज्ञान की शून्यता पाते हैं, (वहाँ) शीत और भी अधिक होता यदि वायु के द्वारा गर्मी पृथ्वी के अन्य गर्म स्थलों से बदल कर न आया करती। इस युक्ति से

यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि क्यों एक ही कटि बन्ध उष्ण है, और दो दो स्थान मध्य कटि बन्ध और शीत कटि बन्ध के हैं।
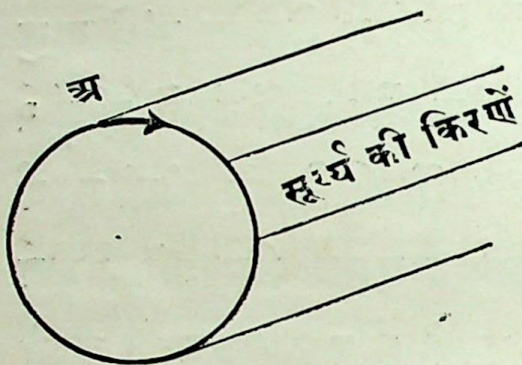
चित्र सं० ५३ ※
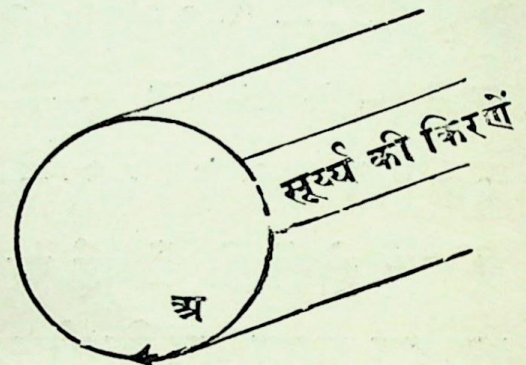
चित्र सं० ५४ ※

चित्र सं० ५३, ५४ से पृथ्वी मण्डल का अभिप्राय है, और तीर के चिन्ह से पृथ्वी की गति का मार्ग प्रकट होता है, और (अ) अक्षर हमारे दृश्य का स्थान है। सूर्य्य की किरणें सदैव एक ही दिशा में एक दूसरे के समानान्तर गमन करती हैं, किन्तु पृथ्वी अपना स्थान बदल देती है। चित्र सं० ५३ पृथ्वी की वह दशा प्रकट करता है जब कि सूर्य्य निकला ही है, (जो हमारे हिसाब से (अ) स्थान पर है)। और चित्र सं० ५४ से पृथ्वी की वह दशा प्रकट होती है जब कि सूर्य्य अस्त हो रहा है। इस बात का देखना सहज है कि चुम्बकीय किरणों के साथ रगड़, प्रातः काल जब कि किरणें हमारे सम्मुख पड़ती हैं, दोपहर के पश्चात् की

रगड़ की अपेक्षा जब कि किरणें हमारी पीठ पीछे पड़ती हैं, अधिक शक्ति शाली होनी चाहिये। इसलिये हमारे ऊपर सामने पड़ने वाली किरणों का प्रभाव अत्यधिक दिखाई पड़ेगा।

यह प्रभाव सान (चाकू इत्यादि की धार बनाने का चक्र) के उदाहरण से भली भाँति स्पष्ट हो जायगा। यदि हम चाकू के फल को इस प्रकार रक्खें कि उसकी धार सान की घुमाव के सामने हो, तो उसकी अपेक्षा, जब की हम चाकू की धार घुमाव की दिशा में रक्खें, अत्यधिक प्रभाव होगा।

उस की गति के विचार से पृथ्वी की उपमा बिजली उत्पन्न करने वाली एक बहुत बड़ी कल से भी दी जासकती है, (बिजली उत्पन्न करने वाले यन्त्र को अंग्रेज़ी में "डाईनेमो" कहते हैं) जिसका चक्कर खाने वाला भाग उन सुइयों से रगड़ खाता है जिनको कि पारिभाषिक शब्दों में ब्रुश कहते हैं, और जिन के द्वारा विद्युत शक्ति उत्तम २ कार्य्य करने के लिये परिवर्तित की जाती है।

कदाचित् कोई शंका करे कि गर्मी प्रातः काल की अपेक्षा दोपहर के पश्चात् साधारण तौर पर अधिक होती है। इसका केवल यही कारण है कि जो गर्मी एक बार उत्पन्न हुई है वह एकत्रित हो जाती है, और नई गर्मी जोकि भविष्य में उत्पन्न होती रहती

है उस से मिल कर बढ़ती रहती है। परन्तु यह वृद्धि वायु के संचालन न होने की दशा में प्रातः काल की अपेक्षा—दोपहर के पश्चात् बहुत कम होगी। सम्भव है वायु के गर्म या ठण्डे झोंके अन्य स्थानों से पहुंच कर दशा को परिवर्तित कर देवें। अतः जिन दिनों वायु बन्द हो तब परीक्षण करने उचित हैं।

पृथ्वी की घूमने की शक्ति भी अपना प्रभाव दिखाती है। निदान कार्य्यकाल में, जिस समय से कि चुम्बकीय किरणें हम पर पड़ती हैं, वह विश्राम काल की अपेक्षा अधिकतर प्रभावित होती हैं, और हमारी कार्य्य करने की शक्ति को तीव्र करती हैं। अतः हमको अपने जीवन व्यतीत करने के नियमों को भी उसी के अनुसार रखना उचित है।

यह प्रभाव हमारे साथ भी निश्चित समय तक रहता है, यहाँ तक कि दोपहर के पश्चात् तक हमको यह ज्ञात भी नहीं होता कि हमारी कार्य्य कारिणी शक्ति में धीरे २ कमी होती जाती है।

प्रत्येक दशा में यदि हम अपने प्रातः काल की चेतनता की तुलना दोपहर पश्चात् की काम करने की योग्यता से करें, तो आश्चर्य्य जनक अन्तर हमको दिखाई पड़ता है। प्रातः काल की चेतनता का कारण केवल रात्रि का आराम ही नहीं है कि जो

हमको हर प्रकार के मस्तिष्क और शारीरिक परिश्रमों को सुगमता से करने योग्य बनाती है। यदि यह बात ठीक होती तो दोपहर का खूब सोना भी वैसा ही गुण रखता; किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। मेरी सम्मति में यह बात निस्सन्देह उसी शक्ति के कारण प्राप्त होती है जोकि प्रकाश व गर्मी उत्पन्न करती है, अतः कृत्रिम साधनों द्वारा अटल सृष्टि नियमों के साथ युद्ध करना बड़ी भारी भूल है।

किन्तु मैं एकबार फिर कहता हूं कि उपर्युक्त लेख केवल एक मनः कल्पना के समान इस अभिप्राय से सामने रक्खा गया है कि कार्य्यकाल व विश्रामकालों के कारणों की व्याख्या की जावे, सम्भव है कि पाठक कदाचित् इस विषय पर विचार करें और इसकी सत्यता या असत्यता की युक्ति की खोज करें।

साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन से फ़्रीनालोजी का सम्बन्ध

चूं कि .फ्रीनालोजी भी मनुष्य के शिर की आकृति से सम्बन्ध रखती है, इसलिये मैं इस स्थल पर कुछ बातें इस विषय में कि साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन से इस का क्या सम्बन्ध है ? बढ़ाता हूं।

.फ्रीनालोजी इस बात की प्रथम कल्पना करती है कि मस्तिष्क का प्रत्येक भाग मस्तिष्क की किसी विशेष शक्ति का निवास स्थान है। अतः यदि उसका कोई भाग साधारण दशा की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ है, तो वह मस्तिष्क शक्ति भी जो उस भाग में रहती है उसी उभार के अनुसार बढ़ी हुई समझी जाती है।

इस प्रश्न पर कि आया .फ्रीनालोजी प्रत्येक विषय में घटनाओं पर निर्भर है या नहीं, बिना विवाद के इतना, विना किसी सङ्कोच के कह सकते हैं कि शिर के कोई विशेष रूप ग्रहण करने पर सम्भव है कि मस्तिष्क की शक्तियें कोई और रूप धारण करें।

शुद्ध मस्तिष्क इस भाँति बनाया गया है कि कोई भी विशेष शक्ति उचित सीमा से नहीं बढ़ती, और किसी मुख्य शक्ति का अनुपात से घट या बढ़ जाना उसी समय होता है जब कि शिर में विकृत पदार्थीय भार उत्पन्न होजाता है। प्रत्येक विकृत पदार्थीय भार प्रारम्भ में सदैव एक प्रकार की तीव्रता उत्पन्न करता है, जैसा कि उन बच्चों की दशा में देखा जा सकता है जोकि आयु के विचार से अधिक तीव्र बुद्धि के होते हैं, किन्तु कुछ समय पश्चात् वह तीव्रता विकृत पदार्थीय भार के कारण रुक जाती है।

घटनाओं के विचार से यह बात उल्लेखनीय है कि बहुधा मनुष्य जो सम्मुख भार में ग्रसित होते हैं उन में शुभचिन्तना, प्रतिष्ठा, विश्वास, और आशा इत्यादि २ जिन का निवासस्थान फ़ीनालोजिस्ट के कथनानुसार, मस्तिष्क का अगला भाग है, स्पष्ट रूप में बढ़ी होती हैं।

जिन मनुष्यों में विकृत पदार्थीय भार बिल्कुल सामने की ओर होता है, उन में बुद्धिमत्ता और सोसाइटी में मिलने की रुचि भी अवश्य होती है, और इसके विपरीत जो पुरुष पीठ के विकृत पदार्थीय भार में ग्रसित होते हैं वह इस प्रकार के प्रत्येक व्यवसाय से दबकते हैं, जिस में दूसरों से अधिक मिलना जुलना पड़ता है, और यदि विवशतया ऐसा व्यवसाय करना पड़े तो

उनको नैराश्य प्राप्त होता है।

फ़ीनालोजिस्ट एक भागी मस्तिष्क शक्ति का घटनाओं में आने को ध्यान में लाया है, किन्तु वह इस बात का कारण नहीं समझता। परन्तु साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन उसको तो भी कुछ न कुछ बतला सकता है। मस्तिष्क का न्यूनाधिक वृद्धि प्राप्त करना किसी प्रकार के विकृत पदार्थीय भार से उत्पन्न होता है। इस से यही फल निकलता है कि विकृत पदार्थीय भार दूर करने से मस्तिष्क की दशा जो ठीक नहीं है, ठीक की जा-सकती है। और यह बात (विकृत पदार्थ का निकल जाना) उस अवसर के लिये अत्यन्त आवश्यक है जहाँ कि भयङ्कर जोश, या मन का झुकाव, यथा—क्रोध, उदासीनत्व, आत्म घात का विचार, नैराश्य, मस्तिष्क की अनियमित वृद्धि से उत्पन्न होगए हों।

बहुधा यह विचार किया गया है कि यह बातें केवल उस समय के कारण हैं जिसमें कि हम उपस्थित हैं, और यह शोक की वार्ता है कि यह बातें बच्चों में भी पाई जाती हैं। किन्तु यह विचार (कि समय ही इसका कारण है) ठीक नहीं हैं, अपितु उसका कारण मनुष्य की उस रोग ग्रसित शारीरिक दशा से प्राप्त है जोकि प्रत्येक स्थान पर दिखाई पड़ती है, और जिसको दुर्भाग्य से उन लोगों ने जिनकी ओर कि सर्व साधारण का ध्यान है, अभी तक पर्याप्त रीति से नहीं पहिचाना है।

परिणाम ।
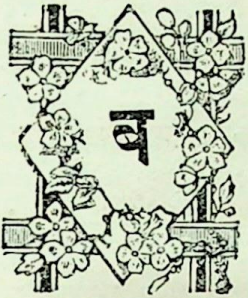
बहुत से पाठक कदाचित् इस बात का विचार करें कि इस पुस्तक में जो व्याख्याएँ की गई हैं वह पूर्ण रीति से वैज्ञानिक (साइन्टिफ़िक) नहीं हैं, परन्तु मेरा अभिप्राय यह ही रहा है कि जो बात कही जावे वह स्पष्ट २ कही जावे और आमिलाना विधि से कही जावे, ताकि मेरी बात को सब मनुष्य समझ सकें। अतः ऐसा करने से निबन्ध (जिस पर विवाद किया गया है) अज्ञान का निबन्ध नहीं बन जाता।

किन्तु वस्तुतः साइन्स क्या है ? केवल अनुभवों और परीक्षणों का संग्रह है, जिसको मनुष्यों ने क्रम दे लिया है, और और स्पष्ट नींव पर स्थिर कर लिया है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता हो या न रखता हो; इस विषय में स्वतन्त्र है कि अपना अनुभव बढ़ावे। वास्तव में यह बात बहुधा देखने में आई है कि उस व्यक्ति ने जिसको प्रारम्भिक या गँवार कहते हैं, स्पेशेलिस्ट की अपेक्षा एक भिन्न प्रकार से विचार किया है, और सत्य बात तक पहुंच

ने में उसने नवीन २ मार्ग निकाले हैं। उसके विपरीत व्यवसायी मनुष्य जिसको नियमित सिद्धान्तों पर शिक्षा दी गई है, प्राचीन और जाने हुए मार्गों पर चला जाता है। यह पुस्तक तीस वर्ष के ध्यान पूर्वक विचार का परिणाम है, और जो परिणाम कि निकाले गये हैं, सहस्रों रोगियों की दशाओं में ठीक सिद्ध किये गये हैं। मैं इस कहने से बहुत दूर हूं कि मैं पूर्ण पद को प्राप्त हो गया हूं, परन्तु तौ भी सच्चे विश्वास से कह सकता हूं कि जो कुछ मैं प्रस्तुत करता हूं उसका परीक्षण भली भाँति कर लिया गया है, और वह परीक्षा में पूर्ण उतरा है।

इस चिकित्सा का अनुभव

यह बात सर्व साधारण के दृष्टिगत कराने के लिये कि इस जल चिकित्सा से क्या २ होना सम्भव है, महाशय पं० जी० वी० कृष्णाराव जी बी० ए० जनरल सेक्रेटरी "आल इन्डिया कुहनी हाइड्रो पैथिक मिशन सोसाइटी" प्रिन्सेस स्ट्रीट बम्बई, में पधार कर इस जल चिकित्सा का परोपकारार्थ प्रचार कर रहे हैं, उनकी स्वस्थ दशा व रुग्णावस्था के कई चित्र इस पुस्तक में पाठकों के लाभार्थ दिये जाते हैं। उक्त महाशय ने अपनी कथा "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" नामक पुस्तक हिन्दी भाषा की प्रथमावृत्ति के पृष्ठ ६३४ से ६३८ में वर्णन की है, उसको पढ़कर उनके इन चित्रों को देखने से वृत्तान्त स्पष्ट ज्ञात हो जायगा, सँक्षेप रीति से प्रत्येक चित्र के नीचे क्रमशः कुछ वृतान्त दिया गया है।

इन चित्रों के ब्लाक महाशय जी० वी० कृष्णाराव जी ने मेरी प्रेरणा से बनवा कर इस पुस्तक में मुद्रित कराने के लिये भेज कर जो मुझ पर महति कृपा की है तदर्थ मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं। और विशेषतः मुखाकृति विज्ञान के पाठकों के उस आक्षेप की भी पूर्ति की है कि यह पुस्तक इस चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त भारतीय पुरुष के चित्र से नितान्त शून्य है।

आवश्यक निवेदन

सभ्य पाठक !

"मुखाकृति विज्ञान" का अंग्रेज़ी का नाम यह "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्स प्रेशन" इस पुस्तक में प्रत्येक स्थान पर छप गया है, क्योंकि आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या की प्रथमावृत्ति में प्रत्येक स्थान पर यह अंग्रेज़ी का नाम छपा था, अतः हिन्दी नाम का परिवर्तन इसलिये नहीं किया गया कि कदाचित् पाठक भूल में न पड़ जावें। परन्तु इस नाम के परिवर्तन करने के लिए भी हमें शीघ्र ही अवसर प्राप्त हुआ है जिसके लिये हम हिन्दी पाठकों के अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या का प्रथम संस्करण हाथों हाथ खरीद लिया और हमें द्विगुण उत्साहित कर शीघ्र ही द्वितीय संस्करण (संशोधित कर) छपाने का सौभाग्य दिया है। इस संस्करण में साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन के स्थान पर मुखाकृति विज्ञान परिवर्तित कर दिया है अतएव सुविज्ञ पाठक स्मरण रक्खें।

विनीत—

शिवदत्त शर्म्मणः

सं० शो०
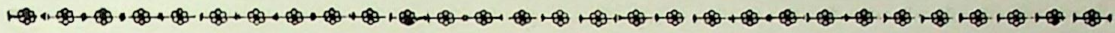
यह सातों चित्र महाशय जी० वी० कृष्णाराव जी की रुग्ण व स्वस्थ दशा के हैं जिनके विषय में पृष्ठ २०१ पर, इस चिकित्सा का अनुभव, लेख में कथन किया गया है। चित्र सं० ५ में जो अन्य पाँच चित्र हैं वह भी इस चिकित्सा के प्रचारक और सहायक मदरास निवासी हैं। शेष चित्र केवल महाशय जी० वी० कृष्णाराव जी के हैं जोकि प्रत्येक दशा के परिवर्तन में फोटो द्वारा लिये गये हैं।

महाशय जी० वी० कृष्णाराव बी० ए०
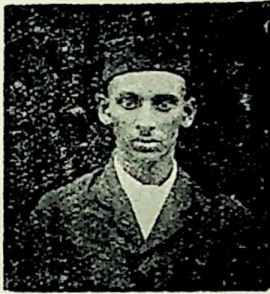
चित्र सं० १ *

आयु १७ वर्ष (१९०५ ई०)

लूई रोग के चंगुल में फँसे हैं।

चित्र सं० २ *

आयु २१ वर्ष (सन् १९०९ ई०)

तीन वर्ष लूई कोहनी की चिकित्सा करके लूई रोग से छूट कर कालिज में फिर पढ़ने लगे हैं, परन्तु बहुत दुर्बल हैं।

चित्र सं० ३ *

आयु २२ वर्ष (सन् १९१० ई०)

स्वास्थ्य प्राप्त कर रहे हैं।

चित्र सं० ४ *

आयु २२ वर्ष (सन् १९१० ई०)

पहिले से अच्छे हैं।
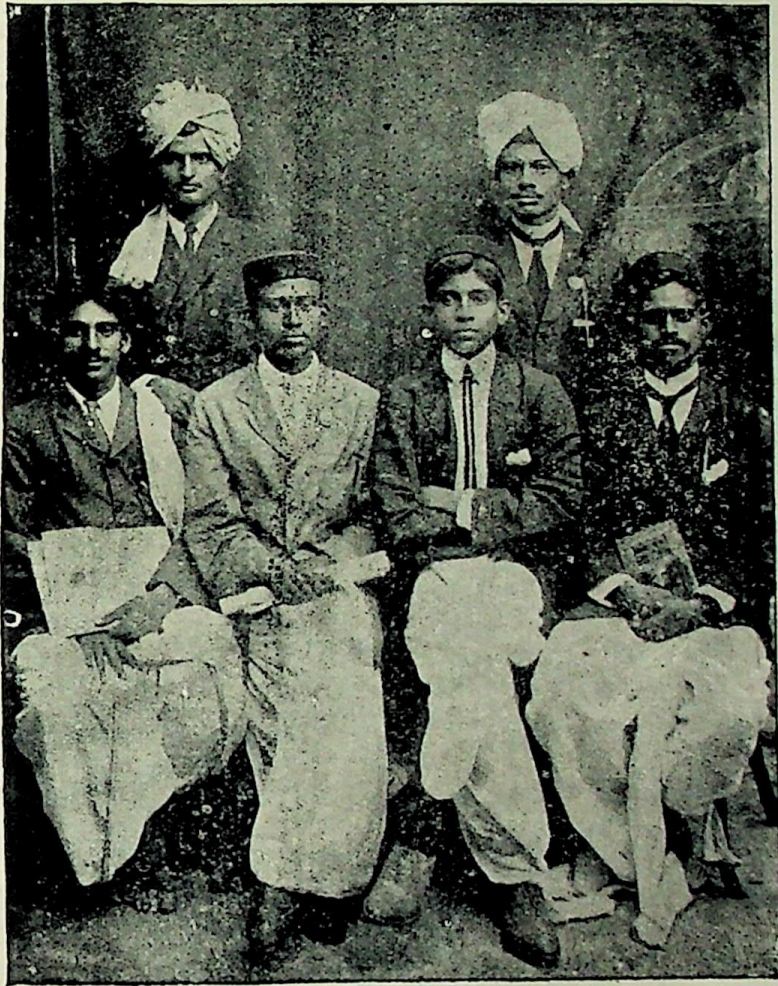
चित्र सं० ५ *

(१) जी० वी० कृष्णाराव बी० ए०-अधिक अच्छे हैं (सन् १९१० ई०)
(२) बी० एस० शर्मा एम० ए० बी० एल० पी० एच० डी०
(३) डी० हनुमन्तराव बी० ए० (४) डी० वी० रामस्वामी बी० ए०
(५) डी० वी० रत्नम् (६) पी० मँगिया

यह सब सत् पुरुष लूई कुहनी के सिद्धान्त पर भले प्रकार चलते थे, जिन्होंने कुहनी नेचर क्योर सोसाइटी की स्थापना मदरास में की थी—और हिन्दुस्तान में इस नवीन चिकित्सा के प्रचार करने में सहायक हुए हैं ।
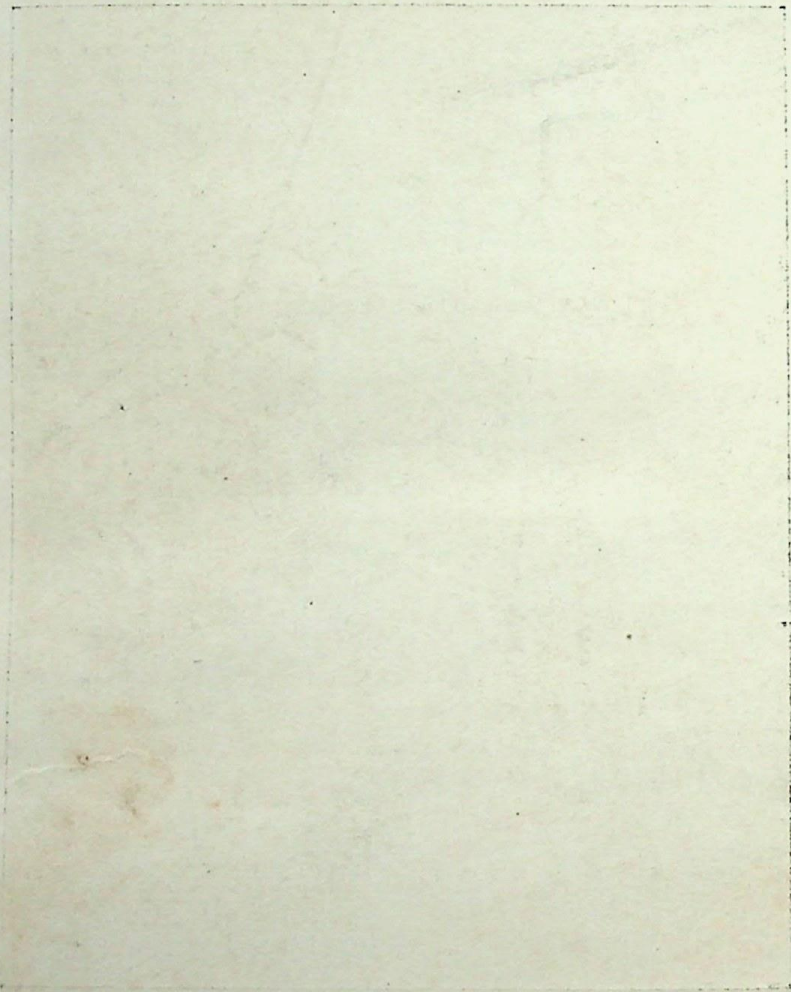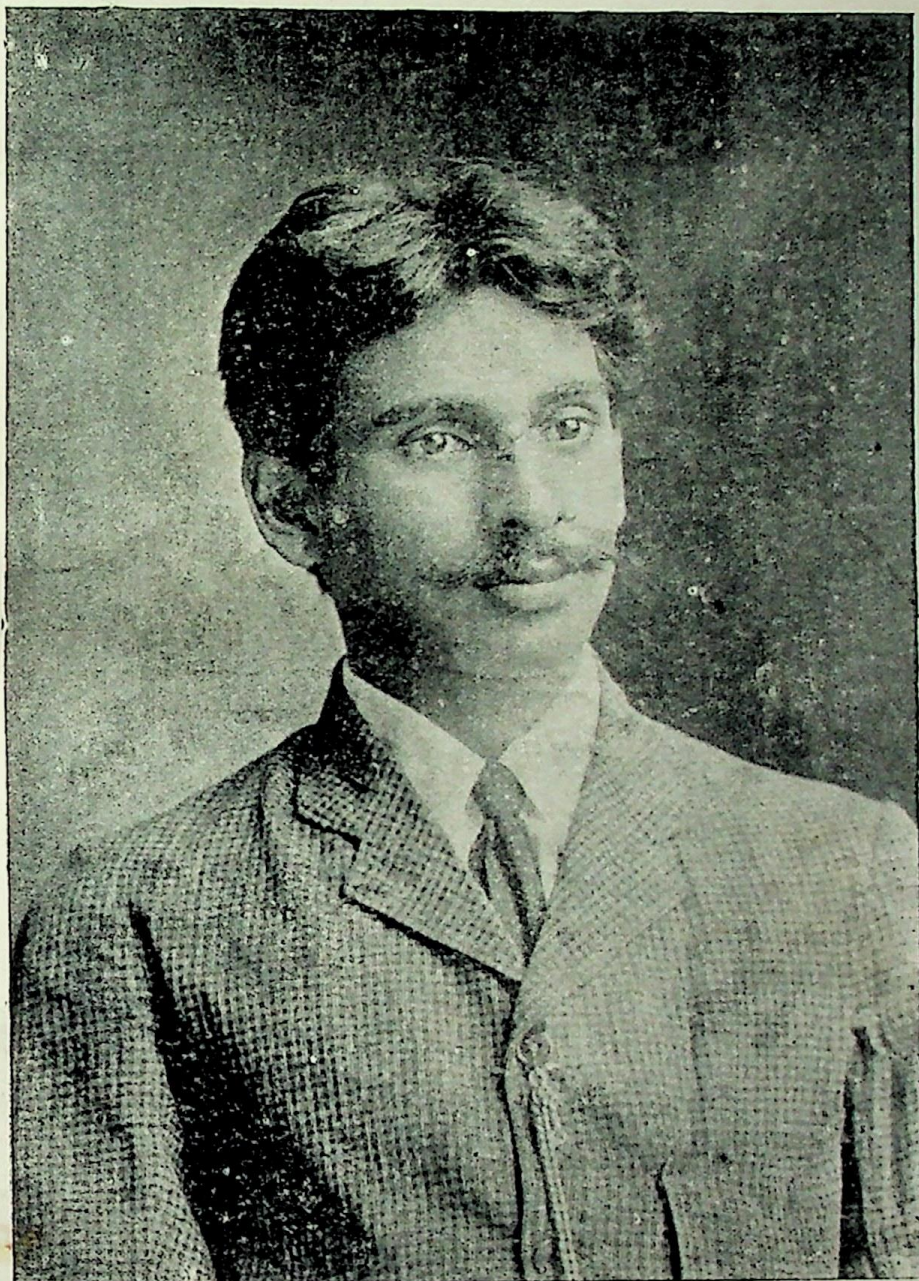
चित्र सं० ६ *

आयु २४ वर्ष (सन् १९१२ ई०)

स्वास्थ्य ठीक होगया है—यह फ़ोटो लूई कुहनी के कारख़ाने (चिकित्सालय) को भी भेजी थी जिससे प्रकट हो कि कि इस जल चिकित्सा से कितना लाभ प्राप्त हुआ था।
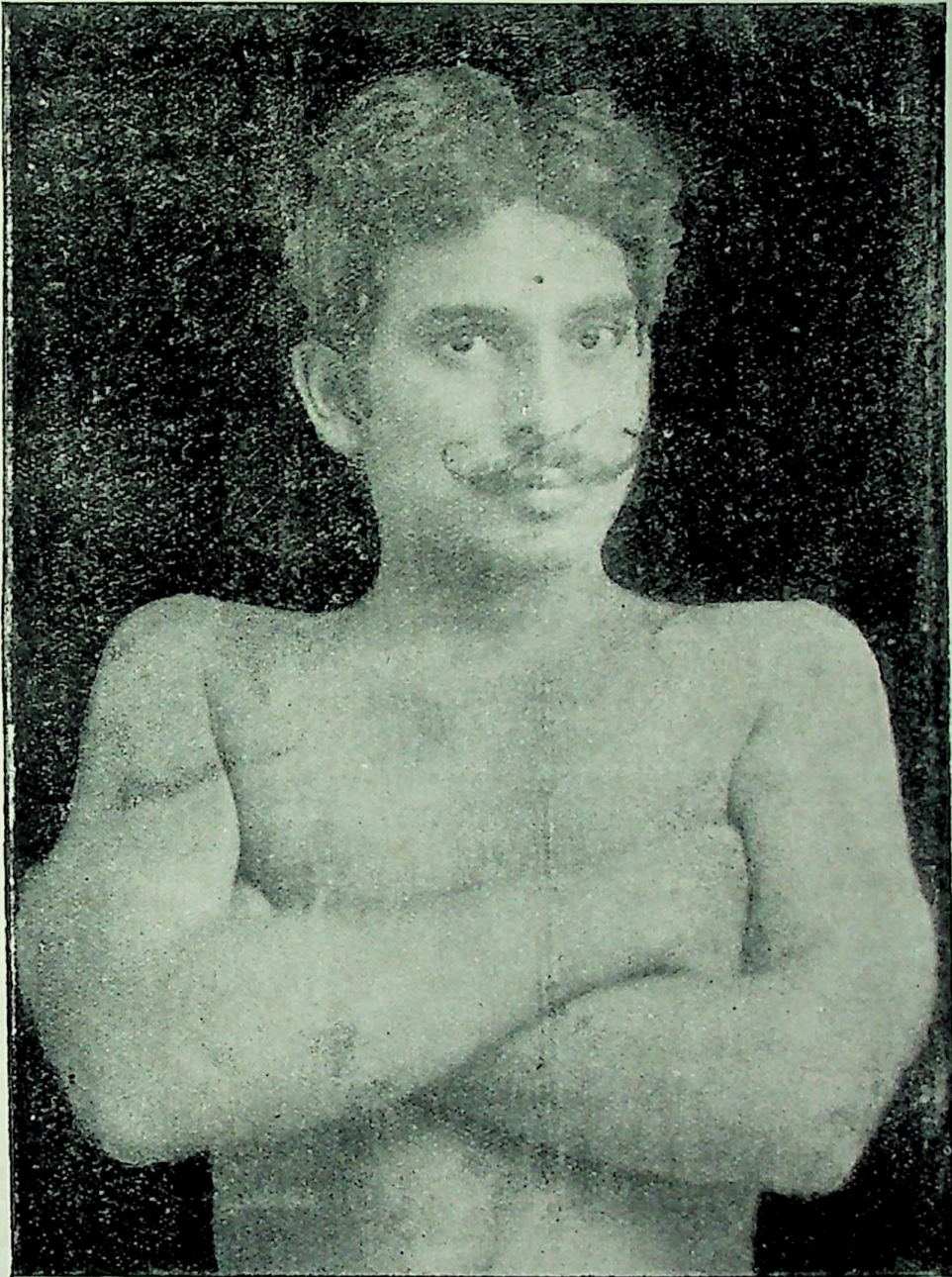
चित्र सं० ७ *

आयु २८ वर्ष (सन् १९१६ ई०)

यह चित्र केवल इसी अभिप्राय से दिया गया है कि जिससे ज्ञात हो सके कि चई का ग्रसित रोगी भी इस नवीन जल चिकित्सा का आश्रय लेकर दुग्ध, अन्न, शाकपात व फलों के सात्विक व अनुत्तेजनीय आहार पर चल कर, और शारीरिक व्यायाम की उचित समय सहायता प्राप्त करके अपना पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। प्रकाशक-

पुस्तक प्राप्ति स्थान—
श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप
बी० ए० एल० एल० बी० वकील
मुरादाबाद यू० पी०
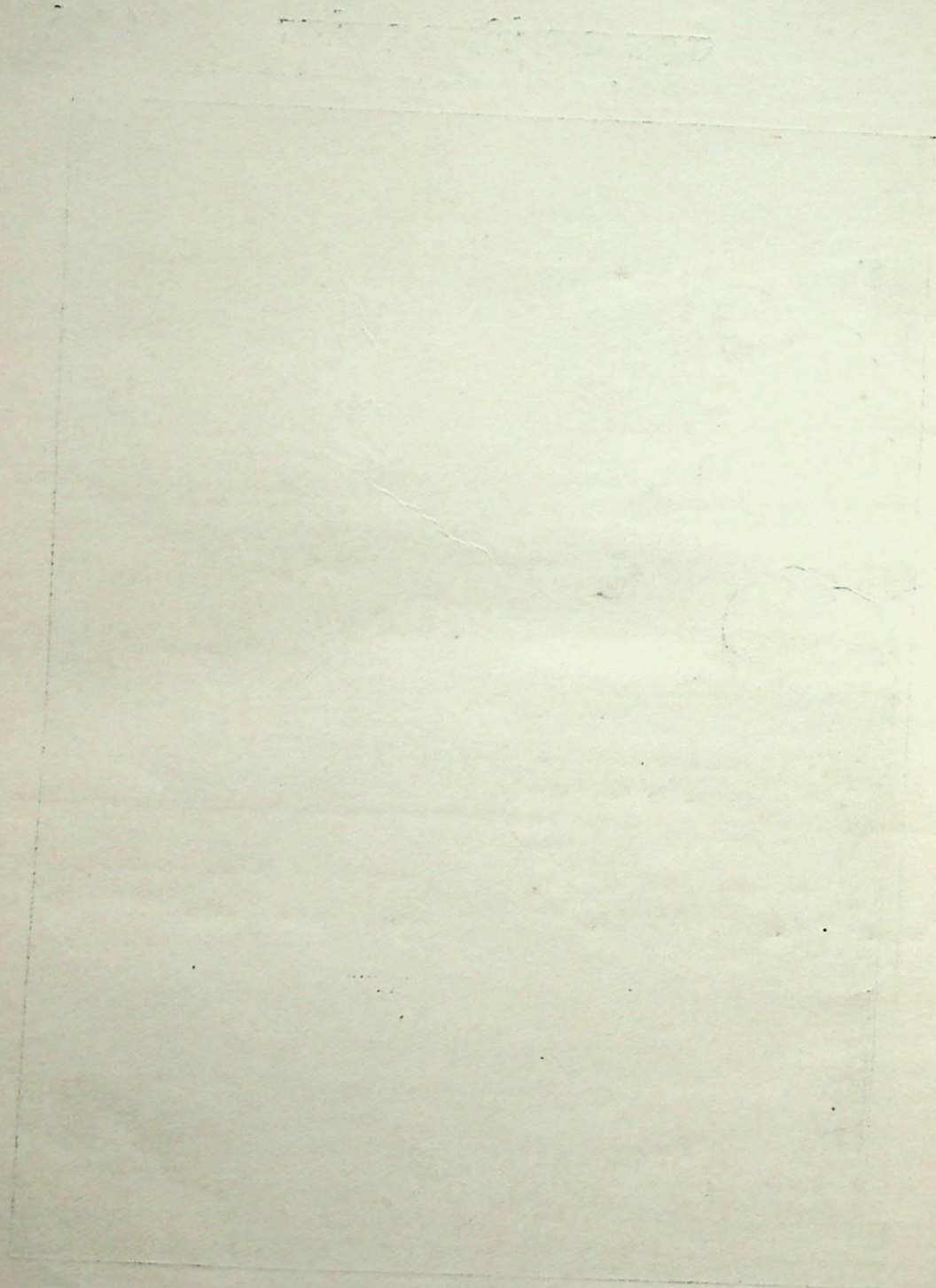
Printed by Soti Jagdish Datta at the 'Deenbandhu' Press Bijnor.